ग्राम्य अर्थ-शास्त्र

(युक्तप्रान्त के हाईस्कूल और इंटरमीडियेट बोर्ड की
हाईस्कूल परीक्षा के ग्राम्य अर्थशास्त्र के
लिये स्वीकृत)

— ❀ —

लेखक

पंडित दयाशंकर दुबे, एम० ए०, एल-एल बी०
अर्थशास्त्र अध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय

और

श्री शंकरसहाय सक्सेना एम० ए०, बी० काम
प्रिंसिपल, महाराणा कालेज, उदयपुर

प्रकाशक

नेशनल प्रेस

इलाहाबाद

१९४८

Printed by
RAMZAN ALI SHAH at the National Press,
Allahabad
7m—948

भूमिका

मैं उन व्यक्तियों में से हूँ जो अर्थशास्त्र के ज्ञान का प्रचार छोटे दर्जे के विद्यार्थियों में भी चाहते हैं। इसलिये मैंने अर्थशास्त्र सम्बन्धी कई विषयों पर पाठ अपनी 'बालबोध' पुस्तक में दिये। यह पुस्तक चार भागों में प्रकाशित हुई और कई वर्षों तक युक्तप्रान्त के प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिये पाठ्यक्रम के रूप में स्वीकृत रही। मुझे यह सूचित करते हर्ष होता है कि इस पुस्तक के अर्थशास्त्र-सम्बन्धी पाठों को अध्यापकों और विद्यार्थियों ने बहुत पसन्द किया। इससे यह भी प्रसिद्ध हो गया कि अर्थशास्त्र ऐसा सरल विषय है, जिसका ज्ञान छोटे बच्चों को भी प्रारम्भिक पाठशालाओं में आसानी से कराया जा सकता है।

अर्थशास्त्र का विषय सरल और महत्वपूर्ण होने पर भी उसे प्रारम्भिक पाठशालाओं के पाठ्यग्रन्थों में अभी तक स्थान नहीं मिला। सन् १९१७ तक तो, जिस वर्ष मैंने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की, अर्थशास्त्र को बी० ए० से नीचे दर्जे की परीक्षा के पाठ्य विषयों में स्थान नहीं दिया गया था। उन दिनों अर्थशास्त्र के विषय का पढ़ना बी० ए० क्लास से ही आरम्भ होता था। इंटरमीडियट तक पढ़ने वालों को तो इस विषय के ज्ञान प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिलता था। कुछ वर्ष बाद अर्थशास्त्र को इंटरमीडियट के पाठ्य विषयों की सूची में स्थान मिला और सन् १९४० से ग्राम्य अर्थशास्त्र को युक्तप्रान्त की हाईस्कूल परीक्षा के पाठ्य विषयों की सूची में भी स्थान मिल गया है। इस ग्राम्य अर्थशास्त्र के पाठ्य क्रम के अनुसार ही यह पुस्तक तैयार की गई है। पुस्तक का तृतीय संस्करण इसी वर्ष ।

प्रस्तुत चतुर्थ संस्करण इसकी उपयोगिता तथा प्रचार का द्योतक है। इसमें यथोचित सुधार तथा संशोधन किया गया है।

इसमें जमींदारी प्रथा की बुराइयों को रोकने तथा अंत में उसका अंत कर देने के लिए सरकार की जो योजनाएँ हैं उनका यथा स्थान उल्लेख कर दिया गया है। सहकारी समिति सम्बंधी अध्यायों में भी उचित सुधार किया गया है।

महाराणा कालेज उदयपुर के प्रिंसिपल श्रीशंकर सहाय जी सक्सेना के सहयोग से यह पुस्तक तैयार की गई है। हम लोग आशा करते हैं कि इस पुस्तक से हाईस्कूल के विद्यार्थियों को ग्राम्य अर्थशास्त्र का विषय समझने में पहले से अधिक सहायता मिलेगी।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे श्री महेशचन्द्र अग्रवाल एम० ए० बी० एस-सी आनर्स 'विशारद' लेक्चरर, प्रयाग विश्वविद्यालय, से जो सहायता मिली है उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

यदि कोई सज्जन इस पुस्तक की त्रुटियों की तरफ मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे या इसको और अधिक उपयोगी बनाने के उपाय बतलावेंगे तो मैं उनका बहुत आभारी होऊंगा।

श्री दुबे निवास
दारागंज (प्रयाग)
१५ सितम्बर १६४८

दयाशंकर दुबे
अर्थशास्त्र अध्यापक
प्रयाग विश्वविद्यालय

विषय-सूची

पहला अध्याय
अर्थशास्त्र के विभाग

दूसरा अध्याय
परिभाषाएँ

तीसरा अध्याय
उत्पत्ति

चौथा अध्याय
खेती

पाँचवाँ अध्याय
घरलू उद्योग धंधे

छठवाँ अध्याय

आवश्यकतायें

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन सहन का दर्जा

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो ?

नवाँ अध्याय

विनिमय

पन्द्रहवाँ अध्याय
किसानों का निराशावादी दृष्टिकोण

सोलहवाँ अध्याय
गाँव की सफाई

सत्रहवाँ अध्याय
ग्रामीण शिक्षा

अठारहवाँ अध्याय
मनोरंजन के साधन

उन्नीसवाँ अध्याय

बीसवाँ अध्याय

पशु पालन

इक्कीसवाँ अध्याय

खेती की उन्नति के उपाय

बाईसवाँ अध्याय

मुकदमेबाजी

तेईसवाँ अध्याय

ग्रामवासियों को ऋणमुक्त करना

चौबीसवाँ अध्याय

कृषि-विभाग के कार्य

पच्चीसवाँ अध्याय

ग्राम और जिले का शासन

छब्बीसवाँ अध्याय

गाँव वालों का पारस्परिक सम्बन्ध

सत्ताईसवाँ अध्याय

अट्ठाईसवाँ अध्याय

गैर-साख कृषि सहकारी समितियाँ

उन्तीसवाँ अध्याय

सहकारी समितियों के यूनियन

तीसवाँ अध्याय

सेन्ट्रल सहकारी बैंक

इकतीसवाँ अध्याय

प्रान्तीय सहकारी बैंक

बत्तीसवाँ अध्याय

CLASSIFIED CONTENTS

(According to the Syllabus of Rural Economics and Co-operation for the High School Examination of 1949 and subsequent year prescribed by the Board of High School and Intermediate Education, U. P.)

विषय सूची, स्वीकृत पाठ्यक्रम के अनुसार

Introduction (विषय प्रवेश १-२३)

ग्राम्य अर्थ-शास्त्र

पहला अध्याय

अर्थ-शास्त्र के विभाग

मनुष्य की आवश्यकताएँ (Human wants)

मनुष्य की—दूसरे जीवधारियों की तरह ही कुछ आवश्यकताएं (wants) होती हैं जिन्हें पूरा किये बिना वह जीवित ही नहीं रह सकता। उसको खाने के लिए भोजन, पीने के लिये पानी, सांस लेने के लिए हवा, शरीर रक्षा करने के लिए मकान और कपड़ा चाहिये नहीं तो उसका जीवित रहना कठिन हो जायगा। यह ऐसी अनिवार्य आवश्यकताएँ (Necessary wants) हैं जिनको पूरा किये बिना मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता। इनको मुख्य आवश्यकताएं (Primary wants) भी कहते हैं।

परन्तु पशु और मनुष्य में यही भेद है कि पशु इन अनिवार्य आवश्यकताओं (Necessary wants) को पूरा करने के उपरान्त और कुछ नहीं चाहते। किन्तु मनुष्य केवल इन आवश्यकताओं को ही पूरा करके रुक नहीं जाता। जहाँ यह अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी हुई कि मनुष्य को और नई आवश्यकताएँ अनुभव होने लगती हैं और वह उनको पूरा करने की चिन्ता में लग जाता है। उदाहरण के लिए मनुष्य को कुछ भोजन जीवित रहने के लिए आवश्यक है परन्तु जब मनुष्य भोजन करता है तो वह बढ़िया बढ़िया मिष्ठान और अच्छे भोजन की इच्छा रखता है। केवल रूखा सूखा भोजन ही उसको तृप्त नहीं करता। इसी प्रकार कुछ कपड़ा शरीर की रक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है परन्तु मनुष्य केवल अपना तन ही नहीं ढकता वह, बढ़िया-बढ़िया डिजाइन व फैशनेबिल वस्तु भी चाहता है। कहने का मतलब यह कि मनुष्य की आवश्यकताएँ असीमित हैं। उनकी कोई सीमा नहीं है।

प्रकृति (Nature) देने वाली है

मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जिन वस्तुओं की ज़रूरत होती है वे हमें प्रकृति से मिलती हैं। किन्तु प्रकृति कुछ वस्तुओं को इतनी उदारता से हमें देती है कि उनके लिए मनुष्य को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। उदाहरण के लिए हवा, धूप और पानी हमें इतनी अधिक राशि में मिलती है कि उसके लिए हमें कोई कोशिश नहीं करनी पड़ती। परन्तु अन्य वस्तुओं को यद्यपि हम प्रकृति से ही पाते हैं परन्तु उनके लिये हमें प्रयत्न करना पड़ता है। बिना प्रयत्न किये प्रकृति हमें उनको नहीं देगी। इसी लिए हम देखते हैं कि मनुष्य बराबर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्रयत्न करता रहता है। उसकी आवश्यकताओं का कभी अन्त नहीं होता है। इस कारण वह लगातार प्रयत्न करता रहता है और अपनी आजीविका उपार्जन करता है।

यही कारण है कि हम प्रत्येक मनुष्य को कुछ न कुछ ऐसा काम करते देखते हैं कि जिससे वह अपना और अपने परिवार का पालन पोषण कर सके। कोई डाक्टर है तो कोई वकील, कोई लकड़ी का काम करता है तो कोई मिट्टी के बर्तन बनाता है।

मनुष्य जिन वस्तुओं को उत्पन्न करता है उनको बदल कर वह उन वस्तुओं को लेता है जिनकी उसे आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए कुम्हार किसान से गेहूँ लेकर अपने मिट्टी के बर्तन दे देता है इत्यादि।

अर्थशास्त्र (Economics)

अब अर्थशास्त्र क्या है इसको हम समझ सकते हैं। अर्थशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें हम मनुष्य के उन प्रयत्नों का अध्ययन करते हैं जो वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए करता है।

यदि कोई मनुष्य अधिक प्रयत्न करता है तो वह अपनी बहुत सी आवश्यकताओं (wants) को पूरा कर लेता है और यदि वह थोड़ा ही प्रयत्न करता है तो उसकी कम आवश्यकताएँ ही पूरी हो सकेंगी। दूसरे शब्दों में पहला आदमी अमीर होगा और दूसरा गरीब होगा। यही दशा एक देश की होती है अगर किसी देश के लोग अधिक प्रयत्न करके प्रकृति से बहुत सी वस्तुएँ प्राप्त नहीं करते तो वह देश निर्धन रहेगा। अर्थशास्त्र में मनुष्य के

इन प्रयत्नों का ही अध्ययन किया जाता है। इसलिए अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमें यह भी मालूम हो सकता है कि हम निर्धन क्यों हैं और किस प्रकार धनी बन सकते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि "अर्थशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें हम मनुष्य के अपने पालन-पोषण के लिए किये गये प्रयत्नों का अध्ययन करते हैं।

अर्थशास्त्र के विभाग

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि मनुष्य अपने और अपने परिवार वालों के भरण पोषण के लिए जो प्रयत्न करता है उनका अर्थशास्त्र में अध्ययन किया जाता है। यह प्रयत्न चार विभागों में बाँटा जा सकता है—

(१) धन (wealth) की उत्पत्ति करना (Production), २ धन का उपभोग करना। (किसी चीज का खर्च करना) (Consumption), ३ विनिमय (Exchange) अर्थात् किसी वस्तु का मोल लेना, ४ वितरण (Distribution) अर्थात उत्पत्ति का बटवारा करना।

उदाहरण के लिए विद्यार्थियों में से ऐसे बहुत से होंगे जिनके पिताजी नौकरी करके, वकालत या डाक्टरी से धन उत्पन्न करते हैं।

अर्थ-शास्त्र (Economics) क्या है ?

क्या कभी तुमने यह भी सोचा है कि तुम्हारे पिता जी इन पैसों को कैसे पैदा करते हैं और इनको कैसे खर्च करना चाहिए? क्या यह अच्छा होगा कि तुम्हारे पिता जी, तनख्वाह पाते ही सब रुपयों को खर्च कर दें? नहीं, क्योंकि ऐसा करने से महीने भर का खर्च कैसे चलेगा? क्या तुम्हारे पिता जी सब को मुफ्त में ही बाँट देते हैं? क्या वे रुपये के बदले में कुछ नहीं लेते? जब तुम मंडी में अनाज खरीदने जाते हो तो रुपये के बदले में गेहूँ, चना, मटर, चावल आदि चीजें खरीदते हो। तुम लोगों में से बहुत से गाँव के रहने वाले हैं। यहाँ किसान खेती करके अनाज की उत्पत्ति करते हैं। जब फसल कट कर खलिहान में आ जाता है तो उसका थोड़ा सा हिस्सा तो खाने के लिए घर में रख लिया जाता है और एक बहुत बड़ा हिस्सा व्यापारी के हाथ बेच दिया जाता है लेकिन एक बात और है। इन सब के पहले खलिहान पर—नाऊ, धोबी, मालगुजार, महाजन आदि का धावा होता है। शहर की तरह गाँवों में

नाऊ, धोबी, बढ़ई वगैरह को नक़द पैसा तो मिलता नहीं। घर पीछे उनका हिस्सा बँधा रहता है। फसल कट जाने पर अनाज में से पहले उनका हिस्सा निकाल देना पड़ता है। महाजन जिनसे किसान रुपया उधार लेते हैं सूद की जगह अनाज ही ले लेते हैं।

ऊपर दिये हुए उदाहरण से यह साफ हो जाता है कि हर एक मनुष्य जो अपने भरण-पोषण के लिए प्रयत्न करता है अर्थात् कोई धंधा या पेशा करता है उसको सब से पहले धन पैदा करना पड़ता है फिर वह उसके बदले उन चीज़ों को मोल लेता है जिनकी उसको आवश्यकता है फिर वह उनका उपभोग करता है अर्थात् काम में लाता है या खर्च करता है और यदि उसने कुछ और लोगों की मदद से धन की उत्पत्ति की है तो उनका हिस्सा बाँटना पड़ता है। सारांश यह है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए हमें उसको चार विभागों में बाँट लेना चाहिए—

१ उत्पत्ति (Production)
२ उपभोग (Consumption)
३ विनिमय (Exchange)
४ वितरण (Distribution)

अब हम आगे इन चार विभागों के सम्बंध में विचार करेंगे।

उत्पत्ति (Production)

हम ऊपर कह आए हैं अर्थशास्त्र हमें उत्पत्ति के बारे में बहुत कुछ बतलाता है, पर यह उत्पत्ति है क्या बला? क्या केवल किसान ही का सम्बंध उत्पत्ति से है? नहीं, दर्ज़ी, जुलाहा, बढ़ई, हलवाई, सबके सब उत्पत्ति कार्य करते हैं। जुलाहा क्या करता है? वह रुई के रेशों को इस प्रकार मिलाता है कि कपड़ा तैयार हो जाता है। दर्ज़ी उस कपड़े को क्या करता है? वह आपके बदन का नाप लेकर उस कपड़े को काट छाँट कर इस प्रकार से सी देता है कि उसकी बनाई हुई कमीज व कोट आपके बदन पर ठीक फ़िट कर जाती है। इसी प्रकार हलवाई मैदा, खोवा, चीनी वगैरह को इस प्रकार मिला कर आग पर भून कर तैयार करता है कि मिठाई बन जाती है। बढ़ई लकड़ी और कुछ कीलों को इस प्रकार मिला देता है कि हमारा

टल, खाट, कुर्सी या मेज बन जाती है। कुम्हार गीली मिट्टी को चाक पर इस प्रकार से सँवारता है कि सकोरा, कल्ह व हाँडी तैयार हो जाती है। किसान को ही ले लो। वह थोड़े से बीजों से मनों अनाज पैदा करता है। परन्तु कैसे? वह बीज को एक खास ढंग से खेत में रखता है। फिर इस प्रकार से खाद व पानी डालता है कि बीज उनके तथा हवा के अंशों को लेकर अपना वेष बदल डालता है। उनमें से एक छोटा सा पौधा फूट निकलता है और वह पौधा अन्त में अपने सैकड़ों दाने पैदा करता है। कहने का मतलब यह है कि कोई भी अपनी ओर से कुछ नहीं जोड़ता। किसान से लेकर, जुलाहे और दर्जी तक सब ये सब पहिले से प्राप्त किसी वस्तु को इस प्रकार से रखते हैं कि उस वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है। जहाँ पहले रुई हमारे बहुत कम काम की रहती है, वहां रुई की कमीज या कोट को हम अपना बदन ढकने में उपयोग करते हैं। इसलिए किसी वस्तु की उत्पत्ति से हमरा मतलब होता है उसे और उपयोगी बनाना।

मान लीजिए आपके खेत के छोर पर आपका एक पुराना सूखा पेड़ खड़ा है। आप उसे बेंचना चाहते हैं और श्याम आपको बीस रुपए देने को तैयार है। आपको दाम कम जँचता है और आप स्वयं पेड़ काट कर उसके तख्ते बना डालते हैं। इन तख्तों को आप तीस पैंतीस रुपए में बेंच सकते हैं। पर यदि आप इन तख्तों से चौखट, कुर्सी, चारपाई आदि बना डालिये तो आपको पचास रुपए भी मिल जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन आपने इतने समय तक किया क्या? उस पेड़ की लकड़ी का तो बढ़ा ही नहीं दी। उल्टा आप उसे काटते छाँटते रहे। हाँ, आपने उस लकड़ी की उपयोगिता अवश्य बढ़ा दी। यहाँ पर क्रिया प्रकृति से प्राप्त की हुई वस्तु की उपयोगिता बढ़ाते रहे हैं। लेकिन जब वकील साहब हमारा मुकदमा जीत जाते हैं, जब ब्राह्मण महाराज हमारे लिए कोई पूजा कर देते हैं अथवा जब पुलिस का आदमी हमारे जान माल की रखवाली करता है, तब तो शायद किसी वस्तु के रूप में परिवर्तन नहीं होता। उपयोगी तो ये सेवाएँ भी होती हैं परन्तु यह ऊपर से बताई वस्तुओं से भिन्न है। इनसे हमारी विविध आवश्यकताएँ सीधी सीधी पूरी होती हैं। पहले दिये गए

उदाहरण अर्थात् किसान का अनाज पैदा करना, दर्जी का कोट सीना, बढ़ई का हल बनाना आदि भौतिक (material-production) उत्पत्ति के उदाहरण हैं। लेकिन वकील, पुलिस, मास्टर वगैरह के कार्य अभौतिक उत्पत्ति (Immaterial production) के अन्तर्गत शामिल किये जाते हैं। भौतिक उत्पत्ति करते समय किसी वस्तु का रूप, स्थान आदि बदल कर उपयोगिता की वृद्धि की जाती है। अभौतिक उत्पत्ति के लिये सेवाकार्य किये जाते हैं कि जिससे मनुष्य की आवश्यकता सीधे सीधे पूरी हो जाती है। उत्पत्ति किस प्रकार होती है। उत्पत्ति करने में कौन कौन मदद करता है, किस किस शक्ति की जरूरत पड़ती है इत्यादि सवालों का जवाब भी हमें अर्थ शास्त्र से ही मिल जाता है। यह तो सब कोई जानता है कि प्रत्येक काम के करने में मेहनत करनी पड़ती है। लेकिन मेहनत किस वस्तु पर की जाती है? महनत करने का सब से सीधा उदाहरण है—घूमना या दौड़ना। घूमते या दौड़ते समय आप हवा में तो चलते ही नहीं। चलते हैं जमीन पर ही। अतएव यदि यह कहा जाय कि किसी भी कार्य में महनत और भूमि दोनों की आवश्यकता पड़ती है तो गलत न होगा। बहुधा यह देखा गया है कि काम करने में आदमी किसी चीज की मदद लेता है और वह भी इसलिये कि काम करने में सुभीता होता है। लकड़हारा जंगलों में जाकर उन लकड़ियों को बटोर कर बेंचने ला सकता है जो भूमि पर टूट पड़ी हों। घास बेंचने वाला हाथ से घास उखाड़ उखाड़ कर जमा कर सकता है। लेकिन वह चाहता है कि घास छीलने में आसानी हो जाय, अर्थात जल्दी जल्दी घास छीलने लगे और इसी कारण से वह खुर्पा का प्रयोग करता है। इसी प्रकार से लकड़ी वाला कुल्हाड़े से काम लेता है। खुर्पा और कुल्हाड़ा मोल लेने के लिए रुपया खर्च करना पड़ता है। इसलिए ये दोनों चीज़ें धन के रूप हैं। खेती करने में भी इसी प्रकार भूमि, श्रम और पूँजी की जरूरत पड़ती है। यदि खेत की जमीन न हो तो किसान बीज कहाँ बोवेगा! वह हल, बैल, फावड़ा, हसिया, खुरपा के रूप में धन लगाता है और स्वयं मेहनत करता है। पर इन तीनों के अलावा उत्पत्ति के किसी कार्य में प्रबन्ध व साहस भी स्थान रखते हैं। हमारा खेतिहर यह

निश्चय करता है कि खेत में कितना पानी डाला जाय। खेत को कितना गहरा खोदा जाय। क्या बरसात में खेत का पानी बह कर निकल जाने दें अथवा उसे खेत ही में रहने दें? कौनसी फसल बोना ठीक होगा। इन सब बातों का प्रबंध तो किसान करता ही है परन्तु किसी किसी समय वह किसी बात का निश्चय नहीं कर सकता। मान लीजिये कोई ज़मीन रामू किसान के पास नहीं थी और इस साल उसने उसे मोल ले ली। उस भूमि के बारे में रामू सब बातें नहीं जानता। क्या वह उस टुकड़े को जमीन के और टुकड़ों से अधिक गहरा खोदे? क्या वह उस खेत में अधिक खाद व पानी डाले या कोई नई फसल पैदा करे जो उसने पहले कभी पैदा नहीं की है। इन सब बातों में रामू को साहस से काम लेना पड़ता है। इस तरह से उत्पत्ति (Production), में भूमि (Land), श्रम (Labour), धन अथवा पूंजी (Capital) प्रबंध (Organisation) और साहस (Enterprise) नामक पाँच शक्तियाँ काम करती हैं।

उपभोग (Consumption)

उत्पत्ति का अर्थ समझ लेने पर अब हम उपभोग के सम्बन्ध में विचार करते हैं। रामू किसी खेत में क्या बोवेगा, इससे अब हमसे बिलकुल मतलब नहीं। वह स्वतंत्र है। चाहे वह गेहूँ बोवे, चाहे चना, चाहे जौ या बाजरा। मान लीजिये वह गेहूँ बोता है। फसल के पक जाने पर किसान गेहूँ को काट-माड़ कर घर में लाता है। घर वाले उसको पीस कर रोटियाँ बनाते हैं और सब कोई उसे खाते हैं। खाने से किसान की भूख मिट जाती है। उसे एक तरह का सतोष मिलता है और हम कहते हैं कि किसान ने रोटी का उपभोग किया। आमतौर पर उपभोग से किसी वस्तु का उपयोग करने या सेवन करने का मतलब निकाला जाता है। लेकिन अर्थ शास्त्र में उपभोग के मतलब कुछ और ही होते हैं। मान लो तुम्हारे पास रोटी का एक टुकड़ा है। उसे तुम खा भी सकते हो और आग में डाल कर जला भी सकते हो। दोनों हालत में कहा जाता है कि रोटी का उपभोग हो गया लेकिन अर्थ शास्त्र के मत से केवल जब रोटी खाई जाती है तभी उसका उपभोग समझा जाता है अन्यथा नहीं। रोटी खाने से तो मनुष्य को एक प्रकार का सतोष मिलता है

लेकिन यदि रोटी आग में जला दी जाय तो किसी की आवश्यकता पूरी नहीं होती और इसलिए किसी को सन्तोष नहीं मिलता। रोटी खाइ जाय अथवा जलाइ जाय दोनों हालत में उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है। अतएव अर्थ शास्त्र के अन्तर्गत जब किसी सेवा या वस्तु का इस प्रकार से उपयोग किया जाता है कि मनुष्य की कोई आवश्यकता पूरी होती हो अर्थात् जिससे मनुष्य को किसी प्रकार का सतोष मिलता है तभी हम कहते हैं कि उस सेवा या वस्तु का उपभोग किया गया। एक बात और, कभी कभी किसी वस्तु का उपयोग किसी अन्य वस्तु के पैदा करने में किया जाता है जैसे किसी कारखाने में कोयले का उपयोग। यहां पर देखना चाहिये कि कोयले के जलने से किसी आदमी की कोई इच्छा पूरी हुई या नहीं। उत्तर है कि हमारे देखते तो कोई इच्छा पूरी होती दिखाई नहीं देती। और जब यह हाल है तो अर्थ शास्त्री ऐसी वस्तु के इस तरह जलने को उपभोग नहीं कहेंगे। हां, अगर जाड़े का दिन हो और आप कोयला जला कर आग तापें तो हम कहेंगे कि आपने कोयले का उपभोग किया, क्योंकि इस बार कोयला जलाने से आपकी ठंढक दूर करने की इच्छा पूरी हो गई।

उपभोग के सम्बन्ध में यह जानना जरूरी है कि इसी के लिए आदमी सब चीजें पैदा करता है और जितनी चीजें पैदा की जाती हैं उन सब का उपभोग किया जाता है। परन्तु किसी आदमी की एक समय में एक इच्छा तो होती नहीं। हर वक्त बहुत सी बातें उसके दिमाग में घूमा करती हैं और सब से बड़ा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि कौन सी इच्छा पहले पूरी की जाय। इसका साधारण सा उत्तर है उस इच्छा को जिसको पूरा करने से सबसे अधिक संतोष या उपयोगिता (Utility) प्राप्त हो। लेकिन आमतौर पर आदमी क्या करते हैं! कौन सी वस्तुएँ आवश्यक (Necessaries) होती हैं, कौन आरामदायक (Comfort) और कौन गुलछर्रे उड़ाने के लिये बनाई जाती हैं। फिजूलखर्ची किसे कहते हैं। उपभोग में इन सब प्रश्नों पर विचार होता है। उससे यह भी पता लगता है कि जो वस्तु किसी गरीब किसान के लिए आरामदायक (Comfort) और विलासपूर्ण (Luxuries) हो वही जमींदार के लिए आवश्यक हो सकती है। अपनी आमदनी का विचार न कर जो

गरीब किसान रोज हलवा पूरी उड़ाता है उसे दुनिया भोग विलासी कहती है। लेकिन जमींदार हलवा पूरी आवश्यक समझते हैं। उनके हिसाब से अमीरी ठाट के अन्दर रेडियो, बिजली, मोटर आदि स्थान रखते हैं। इस बात से रहन-सहन के दर्जे की समस्या उठती है। एक मजदूर किस तरह की जिन्दगी बसर करता है पचास साठ रुपया मासिक तनख्वाह पाने वाले क्लर्क साहब किस प्रकार रहते हैं, महीने में सौ दो सौ रुपए पैदा कर लेने वाले दूकानदार तथा उद्योग धंधे वाले कैसा जीवन व्यतीत करते हैं और हजार पाँच सौ रुपये माहवारी फटकारने वाले जमींदार, डाक्टर या कलक्टर साहब किस मौज से रहते हैं, इन सब बातों का वर्णन व विवेचन रहन-सहन के दर्जे (Standard of living) के अन्तर्गत किया जाता है। जैसे जैसे आय बढ़ती है वैसे ही वैसे मनुष्य अच्छी जिन्दगी बसर करने की कोशिश करता है और उसके रहन सहन का दर्जा ऊपर को उठता जाता है। इतना ही नहीं किसी देश के रहने वाले को किस प्रकार रहना चाहिये, वहाँ की सरकार को उपभोग (Consumption) के सम्बन्ध में किन किन बातों में दखल देना चाहिये इत्यादि और भी बहुत सी बातें हमें उपभोग के अन्तर्गत ही माननी पड़ती हैं। अस्तु हम जान गए कि अर्थ-शास्त्र में उपभोग (Consumption) का मतलब किसी चीज़ के ऐसे उपभोग से होता है जिससे किसी आदमी को सन्तोष हो। अर्थ-शास्त्र के इस भाग में यह विचार किया जाता है कि मनुष्य जो तरह तरह की वस्तुओं का उपभोग करता है कहाँ तक उसके और देश के लिये लाभदायक है और किस हालत में वह हानिकर होता है। लगे हाथ इस बात का भी विचार किया जाता है कि मनुष्य कैसा रहता है और उसका रहन सहन का दर्जा क्या होना चाहिये तथा उस दर्जे को बनाए रखने के लिये देश की सरकार का क्या करना चाहिये?

विनिमय (Exchange)

लेकिन सोचने की बात है कि आजकल कोई आदमी अपने आप मतलब की सारी वस्तुयें नहीं उत्पन्न करता। कोई केवल किसानी करता है तो कोई नौकरी, कोई मजदूर है तो कोई बढ़ई, कोई धोबी है तो कोई चमार। चमार के लिए यह बिलकुल जरूरी है कि जूते बेचने से आने वाले पैसों से

आटा खरीदे और मज़दूर मजदूरी की रक़म से दाल-चावल मोल ले। ऐसा क्यों होता है? बनिये के पास आटा इतनी अधिक मात्रा में रहता है वह आटे से पैसों को अधिक उपयोगी समझता है और हमारे चमार के पेट के लिए तो आटा ज़रूरी है ही। कहने का मतलब यह है कि दोनों ओर वालों को कुछ फायदा होता है तभी अदल बदल होता है। और जब दो वस्तुओं का अदला बदला होता है तो एक वस्तु के कुछ वजन के लिए थोड़ी सी दूसरी वस्तु दी जाती है। उदाहरण के लिए हो सकता है कि बीस सेर गेहूँ के लिए दस सेर चावल मिलें। इस प्रकार अर्थ-शास्त्र (Economics) की दृष्टि से दो सेर गेहूँ का मूल्य हुआ एक सेर चावल। आजकल गाँवों को छोड़ कर शहरों में तो ऐसे उदाहरण बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। अधिकतर पैसे देकर हम तुम बाजार से तरकारी, मसाला आदि खरीद लाते हैं। अब अगर सेर भर गेहूँ का मूल्य दो आना है तो हम कहेंगे कि गेहूँ की कीमत दो आने सेर है। वस्तुओं को इस तरह से लेने देन का नाम विनिमय है। पहले जमाने में जब रुपये पैसे का चलन नहीं था तो वस्तु का वस्तु से ही विनिमय होता था।

विनिमय के साथ प्रश्न उठता है कि विनिमय में दर के सम्बन्ध में किस प्रकार यह निश्चित किया जाय कि एक रुपये के बदले में कितने सेर गेहूँ बेचा जाय अथवा एक मिर्ज़ई को बनाने के लिए रामू किसान गाजी दरजी को कितना चना देवे। इसके अलावा विनिमय के अध्ययन से हमें पता चलता है कि गाँव के किसान अथवा अन्य कारीगर अपने अपने माल को बाज़ार में लाकर किस प्रकार बेचते हैं? गाँवों के हाट और मेले-तमाशे कितना महत्व रखते हैं?

वितरण (Distribution)

उपभोग करने वाले की दृष्टि से तो हमने देख लिया कि वह किस प्रकार विनिमय करके किसी वस्तु का उपभोग करता है। अब हमें देखना चाहिये कि बेचने वाला बिक्री से आने वाले धन में से किस प्रकार अपना हिस्सा लेता है। क्या सारी रक़म उसी की होती है अथवा कोई दूसरा भी उसमें साझीदार होता है। मान लीजिये किसान अपने अनाज को शहर वाले व्यापारी को दे

देता है और वह उसे शहर के बाजार में जाकर बेचता है। बेचने से जो दाम आएगा उसका किस प्रकार बँटवारा किया जाय। सोचने पर मालूम पड़ता है कि उत्पत्ति में जो शक्तियाँ मिल कर काम करती हैं उनके मालिक अनाज को बेचकर आने वाली रकम के हकदार हैं। इसलिए हमारी समस्या यह हो जाती है कि किस प्रकार से निपटारा किया जाय कि भूमि मालक को कितना लगान, मजदूर को कितनी मजदूरी व महाजन को कितना सूद मिले? परन्तु यहाँ पर हम एक बात भूल जाते हैं। उसे साफ करने के लिए थोड़ी देर के लिए मिल मालिक को ले लीजिए। वह मिल का बीमा कराए रहता है और हर साल बीमे की रकम देता है। इसके अलावा हर साल उसकी मशीनें कुछ न कुछ घिस जाती हैं। उनके लिए भी उसे आने वाली रकम में से कुछ निकाल कर अलग रख देना चाहिए। इन सबको काट कर जो बचता है वह ज़मीन के मालक, मेहनत करने वाले मज़दूर, धन लगाने वाले महाजन, प्रबन्धकर्ता व साहस प्रदान करने वाले मनुष्य के बीच बाँटा जाना चाहिए। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं है कि पाँचों काम भिन्न व्यक्ति करें। हम जानते हैं कि मिल मालिक रुपया भी लगाता है, प्रबन्ध भी करता है और साहस भी दिखाता है। इसी तरह किसान अधिकतर मेहनत भी करता है और अनाज पैदा करने के लिए पूँजी भी लगाता है। अब प्रश्न यह उठता है कि इन पाँचों के बीच किस हिसाब से रकम का बँटवारा हो। इसका उत्तर हमें अर्थ शास्त्र के वितरण विभाग से मिलता है।

यही नहीं, इस भाग में यह भी विचार किया जाता है कि कहीं भूमि वाला इतना अधिक भाग तो नहीं ले लेता कि मज़दूरों के पास बहुत कम रह जाता हो और उनका हालत खराब हो जाए। इसके अलावा हमें यह भी मालूम होता है कि जमींदारों और किसानों के बीच में कैसा सम्बन्ध होना चाहिये। धन का वितरण इस प्रकार न होना चाहिये कि ज़मींदार भी गिनती में किसानों से बहुत कम हैं, गुलछर्रे उड़ावें और मर मर कर अनाज पैदा करने वाले किसान भूखों मरें और बेगार भुगतें। किसानों के पास कितना धन पहुँचना चाहिये? क्या उनके लिए इतनी रकम काफी होगी जिससे उनके कुटुम्ब का काम चल जावे? कहा जा सकता है कि देश की उन्नति के लिए

यह ज़रूरी है कि हर एक देशवासी उन्नति करे अर्थात् प्रत्येक आदमी इतना धन पावे जिससे वह दूसरों को कम से कम हानि पहुँचाते हुए अधिक से अधिक लाभ उठावे।

सारांश

अस्तु, हम जान गए कि अर्थ शास्त्र उस विद्या का नाम है जो मिलजुल कर रहने वाले मनुष्यों के उन प्रयत्नों के बारे में विचार करता है जिनसे वे अपनी अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरी करते और अर्थ (अर्थात् धन) या अन्य सामग्रियाँ उत्पन्न करते हैं। आदमियों के धन सम्बन्धी उपायों का पूर्ण रूप से विचार करने के अलावा अर्थ शास्त्र में देशों की आर्थिक दशा और उन्नति का भी ध्यान रक्खा जाता है। अर्थ शास्त्र का अध्ययन अधिकतर उत्पत्ति, उपभोग, विनिमय और वितरण नामक चार मुख्य भागों में बाँट कर किया जाता है।

अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से लाभ

अर्थ शास्त्र के अध्ययन से हमें बहुत लाभ होता है। उसके अध्ययन से हम जान सकते हैं कि हमारा देश जिसको प्रकृति ने भरा पूरा बनाया है—यहाँ की मिट्टी जलवायु पैदावार के लिए अच्छी है। यहाँ की खानों में खनिज पदार्थ भरा है। जगलों में कीमती लकड़ी है। नदियों के जल से बिजली पैदा हो सकती है लेकिन फिर भी हमारा देश गरीब क्यों है? उसकी गरीबी के क्या कारण हैं। यहाँ के अधिकांश निवासियों को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। पहिनने को कपड़े नहीं मिलते, रहने के लिए मकान नहीं मिलते और बीमारी में उनका इलाज नहीं हो पाता। ऐसा क्यों है? इस गरीबी को कैसे दूर किया जा सकता है? किस प्रकार हमारा देश धनी बन सकता है? जिसमें हमारे देशवासी सुखी जीवन व्यतीत कर सकें। अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से हमें यह बहुत बड़ा लाभ होता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—अर्थ शास्त्र क्या है? इसके अन्तर्गत किन बातों का अध्ययन किया जाता है?

२—अर्थ शास्त्र की परिभाषा लिखिए। व्यावहारिक जीवन में इसके अध्ययन से क्या लाभ है ?

३—आपके गाँव में या मुहल्ले में कितने अमीर और कितने गरीब कुटुम्ब रहते हैं ?

४—अपने किसी परिचित अमीर मित्र से यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि भूतकाल में उनका कुटुम्ब कभी गरीब से अमीर किस प्रकार हुआ ?

५—अपने किसी परिचित गरीब मित्र से यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि भूतकाल में उसका कुटुम्ब कभी अमीर से गरीब किस प्रकार हुआ ?

६—अपने गाँव या मोहल्ले के भिन्न भिन्न पेशों के ऐसे व्यक्तियों की सूची तैयार कीजिये जो परिश्रम करके अपनी जीविका प्राप्त करते हैं। इस सूची में उनका पेशा भी बतलाइये।

७—ऐसी २० वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये जिनका उपयोग आपके मकान में प्रति सप्ताह होता है।

८—आपके गाँव के साप्ताहिक हाट में अथवा आपके मोहल्ले के बाजार में जो वस्तुएँ बिकती हैं उनकी संक्षिप्त सूची तैयार कीजिये।

९—किसी गाँव में जाकर यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि फसल के तैयार होने पर किसी एक किसान को बढ़ई, लोहार, नाऊ इत्यादि को कितना अनाज देना पड़ा।

१०—अपने कुटुम्ब की एक मास की आमदनी और खर्च का पूरा हिसाब रखिये और यह बतलाइये कि भोजन, कपड़ा, किराया, शिक्षा, दान, धर्म इत्यादि में कितनी रकम उस मास में खर्च हुई ?

११—यदि तुम्हारे गाँव में किसी को रुपये उधार लेने की जरूरत पड़ती है तो रुपया किससे उधार लिया जाता है और किस दर पर सूद दिया जाता है ?

१२—तुम्हारे गाँव में जमींदार और किसानों का संबंध कैसा है ? क्या किसान जमींदार से प्रेम करते हैं ? यदि प्रेम नहीं करते तो उसके प्रधान कारण क्या हैं ?

दूसरा अध्याय

परिभाषाएँ (Definitions)

धन या सम्पत्ति (Wealth)

पिछले अध्याय में हम बतला आए हैं कि अर्थ शास्त्र में धन सम्बन्धी बातों का विवेचन रहता है। अब हम धन का अर्थ समझाने का प्रयत्न करते हैं। संसार में सब रुपये की ही माया है। बिना रुपया के किसी का गुजर नहीं हो सकता। तुम शहर में जरूर गये होगे। वहाँ तुमने देखा होगा कि लोग अच्छे अच्छे कपड़े पहन कर घूम रहे हैं। फिटन, टमटम, मोटर, साइकिल दौड़ रही है। बड़ी बड़ी दुकानों और कोठियों में लाखों रुपए के माल भरा हुआ है। अमीर आदमियों के ऊंचे ऊँचे मकान बने हुए हैं। अमीर कौन कहलाता है? वह जिसके पास खूब धन दौलत होती है, जो बड़ी बढ़िया शानदार कोठी में रहता है, तथा जिसके यहाँ बहुत से नौकर चाकर होते हैं। लेकिन क्या अमीर आदमी की तमाम दौलत रुपए के रूप में ही रहती है? उत्तर है नहीं। किसी मनुष्य के धन से उसका रुपया, जेवर, मकान, जमीन इत्यादि कीमती वस्तुओं का बोध होता है और वही मनुष्य धनवान कहलाता है जिसके पास ये सब चीजें अधिक तादाद में होती हैं। लेकिन अर्थशास्त्र केवल इन चीजों को ही धन नहीं कहते। अर्थ शास्त्र में हम उन वस्तुओं को धन के नाम से पुकारते हैं जिनको हम काम में ला सकते हैं और जो बेची जा सकती हैं। उदाहरण के लिए गेहूँ को ले लो इसको पीस कर हम आटे की रोटियाँ पका सकते हैं और रोटियों का खाने से हमारी भूख मिट जायगी। अतएव गेहूँ उपयोगी है। गेहूँ को हम बेच भी सकते हैं। जरूरत होने पर हम गेहूँ देकर धोती का एक जोड़ा खरीद सकते हैं। या रुपए के बदले में हम गेहूँ दे सकते हैं और धोती के बदले में रुपया। अतएव गेहूँ विनिमय साध्य वस्तु है। इसलिए अर्थ शास्त्र के हिसाब से गेहूँ भी धन (Wealth) है। इस बात को और साफ करने के लिए हवा को ले लो। यह सबको मालूम है कि वायु हमारे लिए कितनी जरूरी है। इसके बिना हम एक घड़ी भी नहीं जी

सकते। इसलिए वायु की उपयोगिता (Utility) बहुत ज्यादा है। परन्तु क्या यह विनिमय साध्य है? क्या आप वायु के बदले कोई वस्तु ले सकते हैं? वायु हर जगह मौजूद रहता है। इसलिए किसी का मोल न लेने की जरूरत नहीं पड़ती। यह ईश्वर की देन है और हम इसे धन में नहीं गिन सकते। इसी तरह यदि आप नदी या तालाब से दो चार घड़ा पानी भर कर किसी वस्तु से बदला करना चाहेंगे तो कोई बदला नहीं करेगा। क्योंकि नदी और तालाब का पानी आसानी से अधिक मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। जिस व्यक्ति को जितना पानी की जरूरत होती है उतना पानी वह आसानी से नदी से ले लेता है। इसलिए पानी हमारे लिए उपयोगी होते हुए भी धन नहीं कहला सकता। परन्तु यही जल राजपूताना के रेगिस्तान में धन कहलाने लगेगा, क्योंकि जल की कमी के कारण वहाँ पर तो सब कोई इसे मोल लेने के लिए तैयार हो जायँगे। गाय, बैल, मकान, लकड़ी, कंडा, कोयला, पत्थर, पेड़, फल, फूल आदि सब वस्तुएँ सम्पत्ति या धन के स्वरूप हैं। और जब ऐसी चीज सम्पत्ति हो सकता है तो इस हिसाब से हम कूड़ा, करकट, गोबर, राख, हड्डी आदि तक की गिनती सम्पत्ति में कर सकते हैं।

केवल रुपया पैसा (Money) ही धन (Wealth) नहीं

हम ऊपर कह आए हैं कि कुछ लोगों के विचार से रुपया पैसा व सोना-चाँदी का ही नाम सम्पत्ति है। यह बिलकुल गलत है। हिन्दुस्तान में अब भी कितने गाँव मिल जाते हैं जहाँ पर लोगों के पास रुपए नहीं हैं, लेकिन क्या उन गाँवों में अमीर और गरीब नहीं बसते? तुम पूछ सकते हो कि फिर रुपया पैसा आया कैसे? इसकी क्यों जरूरत पड़ी? असली बात यह है कि बिना रुपए पैसे के सम्पत्ति की अदला बदला करने में बड़ा भंभट करना पड़ता है। मान लो तुम्हारे पास चना है और तुम्हें मिर्च की जरूरत है। अब तुम्हें किसी ऐसे आदमी को तलाश करना पड़ेगा जिसके पास मिर्च हो। ख्याल करो कि ऐसा मनुष्य मिल गया लेकिन वह मिर्च के बदले में जूता माँगता है। अब दोनों आदमियों को एक तीसरे आदमी को ढूँढना पड़ेगा जिसके पास जूता हो और जो जूते के बदले में चना लेना चाहता हो। इन्हीं सब भंभटों को दूर करने के लिए रुपए पैसे का रिवाज चला है। रुपया पैसे

के चलन से हम जान सकते हैं कि राम और श्याम में कौन अमीर है। हम क्या करेंगे? हम इस बात का पता लगावेंगे कि राम का घर बार, खेत-पात, कपड़ा-लत्ता आदि का क्या दाम है? मान लो सब मिला कर चार हज़ार रुपया हुआ और श्याम के पास इस तरह से छै हज़ार का माल निकला तो हम कहेंगे कि श्याम राम से अमीर है। अस्तु, यह तै हो गया कि कठिनाइयों को दूर करने के लिए ही रुपए-पैसे चलाए गए और केवल यही धन स्वरूप नहीं है।

पर इस रुपए-पैसे द्वारा हम कोई वस्तु कब खरीदते हैं? तुम कब गेहूँ खरीदते हो अथवा कब तुम्हारे पिता गाँव के चमार से जूता मोल लेते हैं? उस समय जब कि उन्हें जूते की ज़रूरत मालूम पड़ती है। वह जूते के दाम क्यों देते हैं? क्योंकि जूता हवा या जल की तरह ईश्वर की देन होकर काफ़ी परिमाण में आसानी से नहीं मिल सकता अर्थात् जूतों की संख्या परिमित है। इसके अलावा एक बात और है। जूता बनाने के लिए चमार को मेहनत करनी पड़ती है। उस मेहनत के बदले में कुछ देना ज़रूरी है। इसलिए वह दाम देकर चमार से जूता मोल ले आते हैं। तो अब तुम जान गए कि अर्थ शास्त्र में सम्पत्ति किसे कहते हैं। प्रत्येक वस्तु जो उपयोगी होती है, जिसकी संख्या परिमित होती हो व जिसके प्राप्त करने के लिए श्रम करने की आवश्यकता पड़ती है अर्थात् जो वस्तु विनिमय साध्य है, उस वस्तु की गणना हम सम्पत्ति में करते हैं।

सम्पत्ति वृद्धि (Increase of wealth)

यह तो तुम जान गए कि सम्पत्ति किसे कहते हैं पर क्या तुम बता सकते हो कि सम्पत्ति कैसे इकट्ठी की जा सकती है? अर्थात् किसी प्रकार से एक मनुष्य अमीर बन सकता है। यह तो हमको मालूम है कि अमीर के पास वस्तुएँ अधिक मात्रा में होती हैं। अब हमको देखना चाहिए कि वह कैसे अमीर बना होगा या हम तुम कैसे उसकी तरह धन इकट्ठा कर सकते हैं। लोग तरह तरह के तरीकों से धन पैदा करते हैं। एक आदमी दिन भर परिश्रम करके जंगल से घास या लकड़ी लाता है, दूसरा किसी के पास अथवा परिवार या संस्था में नौकरी करता है, तीसरा दूकानदारी करता है, चौथा

किसान है। ये सब अपना काम अक्सर इसीलिए तो करते हैं कि इन्हें धन पैदा करना रहता है। परन्तु हम जानते हैं कि धन की उत्पत्ति के लिए मुख्य शक्तियाँ हैं—भूमि, मेहनत और स्वयं धन भी। मान लो तुम्हारे पास दस बीघा खेत है और तुम उससे अधिक से अधिक अनाज पैदा कर रहे हो। यदि तुमको और अधिक माल की जरूरत है तो इसका उपाय यही है कि तुम दस की जगह बारह पद्रह बीघे जमीन में खेती करो। उत्पत्ति बढ़ाने का दूसरा साधन है श्रम बढ़ाना। अगर खेत में काम करने वाले आठों मजदूर पूरी मेहनत के साथ काम कर रहे हैं तो यह जरूरी है कि उनकी संख्या बढ़ा कर दस या बारह कर दी जाय। धन या पूजी का भी यही हाल है। जब आप धनोत्पत्ति की दो शक्तियों को बढ़ा रहे हैं तो आपको तीसरे को भी ज़रूर ही बढ़ाना पड़ेगा अन्यथा आपका काम नहीं बनेगा। अतएव धनी व समृद्धिशाली बनने के लिए यह जरूरी कि आप अधिक क्षेत्र में काम करें, अधिक मेहनत लगावें व अधिक पूँजी का उपयोग करें।

सम्पत्ति और सुख (Wealth nd welfare)

वस्तु के उपभोग से संतोष होता है और सुख की प्राप्ति होती है। गरीब मनुष्य के पास वस्तुओं की कमी रहती है, उसके पास सुख प्राप्त करने के साधनों का अभाव सा रहता है। गरीब को अधिक सुखी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके धन का परिमाण बढ़ाया जाय, उसकी आमदनी में वृद्धि की जाय। इसी प्रकार आर्थिक उन्नति की जा सकती है। परन्तु धनी बनने और सुखी बनने में महान अंतर है। यह बात ठीक है कि धनी मनुष्य जो चाहे सो कर सकता है। वह मोटर खरीद सकता है। दो चार लठैत और अन्य व्यक्तियों को नौकर रख सकता है। अच्छा अच्छा खाना खा सकता है। परन्तु अमीर आदमी बदमाश और बदचलन भी हो सकते हैं। बुरे कामों में रुपया भी लुगा सकते हैं। समृद्धिशाली और सुखी बनने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि रुपया किस प्रकार खर्च किया जाता है। सुखी जीवन बिताने के लिये थोड़ी सी सादगी अख्तियार करनी पड़ेगी। यही नहीं, ज्ञान की भी जरूरत पड़ती है। क्या हुआ यदि आपको यकायक एक लाख

उसी की लाटरी मिल गई। यदि आप मूर्ख हैं, यदि आपके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है तो आप बड़ी जल्दी सब रुपया उड़ा देंगे। दूसरी ओर अगर आप पढ़े लिखे हैं, अगर आपको अर्थ शास्त्र की बातें मालूम हैं तो आप उस धन का उपयोग इस प्रकार से कर सकते हैं कि जिससे आपकी और देश की भी दशा सुधरने लगे।

उपयोगिता (Utility)

अब प्रश्न उठता है कि आपको किस प्रकार रुपया खर्च करना चाहिये। आपको कौन कौन सी वस्तुएँ खरीदनी चाहिए और कितनी? इससे भी मुख्य सवाल है कि आप क्यों किसी चीज को खरीदते हैं क्योंकि आपको उसकी जरूरत रहती है क्योंकि वह चीज आपके लिए उपयोगी है। मान लीजिए आप अपने गाँव के हाट में गए। वहाँ पर बहुत सी चीजें बिकने के लिए आती हैं। कोई कपड़ा खरीदता है, कोई गेहूँ चना खरीदता है, कोई कुछ खरीदता है तो कोई कुछ। आप भी कोई वस्तु पसन्द करके खरीद लेते हैं। परन्तु क्या आप बता सकते हैं कि आपने उसको क्यों खरीदा? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह जानना जरूरी है कि किसी वस्तु की उपयोगिता क्या होती है? कहा जाता है कि उपयोगिता किसी वस्तु का वह गुण है जिससे उस वस्तु की चाह होती है। इसका सम्बन्ध मन से होता है। प्रत्येक मनुष्य की इच्छा या रुचि में कुछ न कुछ भेद जरूर रहता है। इसीलिए किसी एक चीज की उपयोगिता प्रत्येक आदमी के लिये बराबर नहीं होती और हम उपयोगिता वर्णन किसी नाप या तौल से नहीं कर सकते। लोग किसी वस्तु का मूल्य तय करने में उस वस्तु की उपयोगिता का विचार जरूर करते हैं। मान लीजिये रामू किसान के सामने हल, फावड़ा, खुर्पी आदि रक्खी है और उससे कहा गया कि वह कुछ मोल ले ले। रामू सोचेगा कि मेरे पास इतना रुपया तो है नहीं कि दो बैल और खरीदूँ। इसलिये हल को मोल लेना ठीक नहीं। फावड़ा भी रामू ने पास कई हैं इसीलिये वह फावड़े की भी जरूरत नहीं समझता। लेकिन उसके पास खुर्पी नहीं है। और खेत से घास-फूस उखाड़ कर फेंकने के लिये उसे खुर्पी की जरूरत है। अतएव वह खुर्पी को मोल ले लेगा।

इसी तरह हम उत्पत्ति में भी करते हैं। हम किसी वस्तु विशेष को उत्पन्न या नष्ट नहीं कर सकते। हम केवल उपयोगिता को ही उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिये हल को ले लीजिये। बढ़ई अपने औजारों की मदद से लकड़ी को काट छाँट कर उसे हल का रूप देता है। ऐसा करने से लकड़ी की उपयोगिता बढ़ गई। काम आते आते कई वर्षों के बाद हल टूट जाता है। उसकी उपयोगिता जाती रहती है। लकड़ी पड़ी रहती है पर हल काम का नहीं रहता।

सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)

हम ऊपर कह आये हैं कि किसी वस्तु की उपयोगिता भिन्न मनुष्यों के लिये भिन्न भिन्न होती है। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि उसी मनुष्य के लिये एक वस्तु की उपयोगिता एक दशा में कुछ और हो सकती तो दूसरी दशा में कुछ और। उदाहरण के लिये मान लो तुमको खूब जोर से भूख लग रही है। उस समय रोटी तुम्हारे लिये बहुत बड़ी उपयोगिता रखती है। पर एक रोटी खा लेने के बाद तुम्हारी भूख कुछ कम हो जाती है और दूसरी रोटी की उपयोगिता उतनी नहीं रह जाती जितनी कि पहली रोटी की थी। तीसरी रोटी की उपयोगिता दूसरी से भी कम होती है। अब अगर तीन रोटी से तुम्हारा पेट भर चला हो तो तुम सोचोगे कि चौथी रोटी ली जाय या नहीं। मान लिया तुमने चौथी रोटी ले ली। इसको खाने से तुम्हारा पेट बिल्कुल भर गया। अब अगर कोई तुम्हारे आगे दो चार रोटियाँ और डाल दे तो तुम्हारे लिए उनका मूल्य नहीं के बराबर है। चूँकि पहली चार रोटियों से तुम्हारे पेट का पूरा सन्तोष मिल चुका इसलिए तुम पाँचवीं या छठी रोटी को बिल्कुल नहीं खाओगे। उपयोगिता के घटने का एक बड़ा अच्छा उदाहरण मिलता है जब कोई मथुरा का चौबे भोजन करने बैठता है। जब वह खाकर उठने लगता है तो आप कहते हैं कि चौबे जी एक लड्डू और ले लीजिए। चौबे महाराज सिर हिला देते हैं। इस पर आपका दोस्त हरी कह उठता है कि चौबे जी एक लड्डू खा लो तो एक आना पैसा दूँगा। पैसे के लोभ में चौबे लड्डू लेकर खा जाते हैं। जब वह उठने लगते हैं तो अबकी बार आपका दूसरा मित्र श्याम कहता है कि महाराज एक लड्डू

और ले लो तो मैं आपको एक दुअन्नी दूं। महाराज राजी हो जाते हैं। इसी प्रकार तीसरे लड्डू पर चौबे जी को चार आने और चौथे पर आठ आने दिये जाते हैं। पाँचवे लड्डू के लिये एक रुपया इनाम रक्खा जाता है लेकिन इस बार पेट जवाब दे देता है। चौबे जी ने अब तक जो चार लड्डू खाए उनकी उपयोगिता पहले खाए भोजन से कहीं कम थी। परन्तु उनकी उपयोगिता में जो कमी होती वह पैसों की उपयोगिता के कारण पूरी हो जाती थी और चौबे महाराज का पेट किसी तरह ठूँस ठाँस कर लड्डू को स्थान दे देता था। लेकिन अब पेट एक दम भर गया। और चौबे महाराज उसे बिल्कुल नहीं खा सकते। इसलिए एक छोड़ अगर उन्हें दस रुपया भी दिया जाय तो वे उस पाँचवें लड्डू को न खायेंगे।

अर्थशास्त्र के हिसाब से ऊपर दिए गए उदाहरण में रोटी खाने वाले के लिए रोटियों की सीमान्त उपयोगिता चौथी रोटी की उपयोगिता के बराबर है। इसी प्रकार यदि मनोहर के पास बीस आम हों तो आमों की सीमान्त उपयोगिता बीसवें आम की उपयोगिता के बराबर होगी। परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि आमों की सीमान्त उपयोगिता (marginal utility) और कुल उपयोगिता में फर्क है। कुल उपयोगिता तो बीसों आमों की उपयोगिता के जोड़ के बराबर है, लेकिन सीमान्त उपयोगिता केवल अन्तिम आम की उपयोगिता के बराबर होती है। अगर मनोहर के पास एक ही आम होता तो कुल उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो जाती। परन्तु जैसे जैसे वस्तु की संख्या या परिमाण बढ़ता जायगा वैसे उनकी सीमान्त तथा कुल उपयोगिता के बीच का फर्क भी बढ़ता जायगा।

मूल्य (Value)

मान लो बाजार में तुमने गेहूँ और चना दोनों बिकते हुए देखे। और तुम दोनों को खरीदना चाहते हो। अब अगर तुम्हारे हिसाब से गेहूँ की उपयोगिता चने से दुगुनी है तो तुम एक रुपये में जितना गेहूँ लोगे उसी रुपए में उससे दुगुना चना माँगोगे। उदाहरण के लिए अगर तुम एक रुपए में दस सेर गेहूँ लोगे तो बीस सेर चना माँगोगे। यदि कहीं तुम गेहूँ बेचने वाले होते और श्याम चने वाला तो तुम श्याम से फी सेर भर गेहूँ की जगह दो सेर

चने माँगते। और यदि श्याम भी एक सेर गेहूँ के बदले दो सेर चना देने को राजी हो जाय तो दो सेर चना का मूल्य एक सेर गेहूँ समझा जायगा। इसी तरह अगर तुम अपनी गाय को बेंच बकरियाँ ख़रीदना चाहो और अगर तुम्हारी निगाह में गाय की उपयोगिता बकरियों से तिगुनी हो तो तुम एक गाय के बदले में तीन बकरियाँ माँगोगे। जब किसी वस्तु को किसी अन्य वस्तु से अदला बदला की जाती है तब पहली वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु कितनी दी जाय इसका निश्चय उपयोगिता द्वारा ही होता है। ऐसी हालत में अर्थशास्त्र के अनुसार एक गाय का मूल्य तीन बकरियाँ हुई और एक सेर गेहूँ का मूल्य हुआ दो सेर चना।

मूल्य (Value) का जो अर्थ ऊपर दिया गया है उससे क्या नतीजा निकलता है? इसके मतलब होते हैं कि यदि एक चीज का मूल्य घट जायगा तो दूसरी का कम हो जायगा। मान लीजिये कि पहिले दो आम का मूल्य होता था एक ख़रबूजा। अब यदि किसी तरह आम कि फसल आधा हो तो आम का मूल्य दुगुना हो जायगा यानी दो आम के बदले दो ख़रबूजे मिलेंगे या एक आम के बदले एक ख़रबूजा मिलेगा। आम का मूल्य तो दुगुना हो गया पर ख़रबूजे के मूल्य का क्या हाल है। जहाँ पहले एक ख़रबूजे के लिये दो आम मिलते थे वहाँ अब एक ही आम मिलता है अर्थात ख़रबूजे का मूल्य आधा हो गया। एक बात और। यदि कहीं आम की फ़सल न बिगड़ती पर ख़रबूजों की संख्या दुगुनी हो जाती तब भी यही बात होती जो आमों के आधे रह जाने पर हुई थी। अर्थात् एक ख़रबूजे के लिये एक ही आम मिलता।

क़ीमत (Price)

पुराने ज़माने में जब रुपये-पैसे का चलन नहीं था तब एक वस्तु दूसरी वस्तु से बदली जाती थी। उस समय मूल्य का बोलबाला था। परन्तु उसमें कठिनाई होती थी। अगर सुमेर को किसी वस्तु की जरूरत है तो उसे ऐसे मनुष्य को ढूँढना पड़ता था जिसके पास वह चीज़ हो जिसकी सुमेर को आवश्यकता है। इतना ही नहीं उस मनुष्य को ऐसी वस्तु की आवश्यकता होनी चाहिए जो सुमेर के पास है। इसके अलावा यह भी झगड़ा रहता कि हर एक

अपनी अपनी चीज़ें बदलने को तैयार हों। मान लो सुमेर को एक कम्बल की जरूरत थी और कुबेर जिसके पास कम्बल है सुमेर का गम काट लेना चाहता है। लेकिन अगर सुमेर कोट देने को राजी नहीं हो तो अदला बदली होना असंभव है। जब से रुपए पैसे का उपयोग होने लगा तब से ये सब बाधाएँ हट गई। अगर तुम अपना सेर भर घी बेच कर चार सेर शक्कर खरीदना चाहते हो, तो केवल इस बात की ज़रूरत है कि तुम किसी के हाथ अपने घी को एक रुपए में बेच दो। और उस रुपये को जाकर शक्कर खरीद लो। ऐसी हालत में सेर भर घी का मूल्य हुआ एक रुपया और सेर भर शक्कर के चार आने। जब किसी वस्तु की इकाई का मूल्य इस प्रकार रुपये पैसों में लगाया जाता है, तो वह मूल्य वस्तु की इकाई की कीमत कहलाता है। अगर हम एक गाय साठ रुपये में बेचते हैं तो गाय की कीमत हुई साठ रुपया। लेकिन अगर हम उसको तीन बकरियों के एवज़ में बेचते हैं तो तीनों बकरियाँ कीमत न कहला कर गाय का मूल्य कहलाती है। तो मोटी बात यह है कि किसी चीज के बदले में जो चीज मिले वह उसका मूल्य है और उसके बदले में जो रुपया मिले वह उसकी कीमत है।

आय (Income)

अब तक हम और किसी वस्तु की उपयोगिता, मूल्य और कीमत के बारे में बातें कर रहे थे। मान लो मुरली अनाज की दूकान रखता है। वह हर समय रुपये के बदले गेहूँ, चना, मटर, जौ, बाजरा, अरहर, मूँग, चावल आदि अन्न बेचा करता है। बेचने से जो रुपये आते हैं उन्हें वह एक कापी पर लिखता जाता है। महीने के आखिर में जोड़ लगाने से उसे मालूम पड़ जाता है कि महीने भर में उसे कितने रुपये मिले। इस आमदनी में से अगर हम वह रकम निकाल दें जिसका कि मुरली ने अनाज खरीदा था तो बची हुई रकम मुरली की आय कहलाएगी। इसी प्रकार क्लर्क साहब महीने भर काम करने के बाद पहली तारीख को अपना वेतन लेकर घर जाते हैं। परन्तु यह वेतन है क्या? यह है क्लर्क साहब की महीने भर के काम की कीमत और अर्थशास्त्र में ऐसी कीमत को आय कहते हैं। मजदूरों को अपनी मजदूरी रोजाना, हर हफ्ते, पन्द्रहवें दिन अथवा महीने पर मिलती है।

महीने भर में उन्हें कुल जितना रुपया मिलता है वही उनकी माहवारी आय होती है। आय रोजाना से लेकर सालाना तक हो सकती है। अर्थशास्त्र में आय से उस रकम का बोध होता है जो कोई मनुष्य किसी निश्चित समय में कमाता है। समय के किस परिमाण की आय निकाली जाय यह आय निकालने वाले की इच्छा पर निर्भर रहती है। अधिकतर आय से लोगों का मतलब माहवारी आय से रहता है। लेकिन कहीं कहीं सालाना आय रिपोर्ट करनी पड़ती है। तुम्हें मालूम है कि भारत की सरकार तुम्हारी आय के ऊपर आयकर या इन्कमटैक्स लगाती है। इस आय के निकालने में मकान के किराय और बैंक में जमा सूद से लेकर कारबार का मुनाफा तक इस आय में जोड़ लिये जाते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—'विनिमय साध्य' वस्तु किसे कहते हैं? उदाहरणों सहित समझाइये। क्या ज्ञान विनिमय साध्य है?

२—निम्नलिखित वस्तुएँ किन दशाओं में धन समझी जायेंगी? गंगा जल, यजमानी, रेल का टिकट, घर का कूड़ा-कचरा, कागजी मुद्रा, नोट, मनुष्य का शरीर, अस्पताल सार्वजनिक पुस्तकालय।

३—कुछ ऐसी वस्तुओं का उदाहरण दीजिये जिनकी उपयोगिता किसी मनुष्य के लिये समय के साथ बदलती जाती है।

४—निम्नलिखित वाक्यों की गलतियों को दुरुस्त कीजिये —

(अ) २० सेर गेहूँ की कीमत ७) है।

(ब) पाँच सेर चावल की कीमत दस सेर गेहूँ है।

(स) ५ गायों की कीमत १२५ रुपया है।

(ड) एक सेर चना का मूल्य ६ पैसे है।

(क) एक गज कपड़े का मूल्य तीन आना है।

५—अपने कुटुम्ब की आमदनी का एक मास का हिसाब लिखिये और यह बतलाइये कि किन किन जरियों से कितनी आमदनी प्राप्त हुई?

६—यदि कोई मनुष्य अपने निजी मकान में रहता है तो उसको अपने मकान से वर्ष भर में क्या आमदनी होती है?

७—आर्थिक उन्नति के क्या साधन हैं ? गरीब लोग अधिक सुखी कैसे हो सकते हैं ?

८—धनी लोग भी कभी दुखी पाये जाते हैं । इसके क्या कारण हैं ?

९—आदर्श जीवन का सुख की वृद्धि से क्या सम्बन्ध है ?

तीसरा अध्याय

उत्पत्ति (Production)

उपयोगिता-वृद्धि (Increase in utility)

प्रत्येक मनुष्य को भोजन, कपड़ा आदि की जरूरत पड़ती है । इनके बिना उसका काम ही नहीं चल सकता । अपनी इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसे तरह तरह की वस्तुओं को बनाना या तैयार करना पड़ता है । मिल-जुल कर रहने वाले किसी भी मनुष्य को देख लो । वह हर समय इस बात का उपाय करता है कि उसे किसी प्रकार धन मिले । धन की उत्पत्ति करने के लिए आदमी दिन भर मेहनत करके जंगल से लकड़ी या घास काट कर लाता है, दूसरा किसी के यहाँ नौकरी करता है, तीसरा दूकानदार है तो चौथा डाक्टर । यह तो हम आपको पहले ही अध्याय में बता चुके हैं कि अर्थशास्त्र में उत्पत्ति का क्या मतलब होता है । और यह भी कह चुके हैं कि उत्पत्ति किस प्रकार की जा सकती है । कोई वस्तु उत्पन्न करने के मतलब होते हैं किसी प्रकार की उपयोगिता को बढ़ाना । कुम्हार मिट्टी के बर्तन बना कर मिट्टी की उपयोगिता में वृद्धि करता है ? बढ़ई लकड़ी को काट छाँट कर मेज़ कुर्सी बनाता है । ऐसे करने से लकड़ी की और उपयोगिता बढ़ जाती है । इसी प्रकार के रूप परिवर्तन द्वारा चना, मटर, गेहूँ आदि अनाज खेती से पैदा किये जाते हैं । खेती बारी में अन्न पैदा करने का काम तो स्वयं प्रकृति करती है । मनुष्य तो केवल बीज, खाद, पानी वगैरह का इन्तज़ाम करता है । परन्तु स्थान और अधिकार बदल देने से भी किसी का उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है । जहाँ जो सामान अधिक मात्रा में

होता है वहाँ से जब उन्हें उन जगहों में ले आया जाता है जहाँ उस सामान की मात्रा कम है, तो उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। लोहे, कोयले या पत्थर की अपनी खान के पास या लकड़ियों की जंगल में उपयोगिता बहुत कम होती है। लेकिन जब यही चीज़ें रेल या मोटर द्वारा बाज़ार में पहुँचा दी जाती हैं तो इनकी उपयोगिता बढ़ जाती है। इसी प्रकार अन्न, साग, फलों को खेतों या बागों से बाज़ार में पहुँचा कर उनकी उपयोगिता बढ़ाई जा रही है। जब हम किसानों से अनाज मोल लेकर बाज़ार में किसी घर गृहस्थी वाले आदमी के हाथ उसे बेच देते हैं तब भी उपयोगिता बढ़ती है। क्योंकि किसान के अधिकार में तो इतना अनाज है कि उसके लिये उसकी उपयोगिता कम है लेकिन घर गृहस्थी वाला आदमी खाने के लिए अनाज चाहता है और इसलिए उसके अधिकार में पहुँच जाने से अन्न अधिक उपयोगी बन जाता है। उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। उपयोगिता वृद्धि में समय भी सहायता करता है। नये चावल की प्रायः बहुत कम कदर होती है। लेकिन अगर नया चावल साल दो साल रख छोड़ा जाय तो उसमें कुछ खास गुण आ जाता है और उसकी कदर या उपयोगिता बढ़ जाती है। इसी तरह माघ पूस में बरफ को कोई नहीं पूछेगा। अगर उसे किसी तरह गर्मियों तक रख रखें तो उसकी बड़ी कदर होगी।

यह तो हमने देख लिया कि रूप, काल, स्थान या अधिकार परिवर्तन के द्वारा उत्पत्ति या उपयोगिता वृद्धि की जा सकती है। परन्तु इन परिवर्तनों के करने में हमको किसी शक्ति का सहारा ढूँढना पड़ता है? कुछ समय पहले तक धन की उत्पत्ति के लिए तीन चीज़ों की जरूरत मानी जाती थी — भूमि, (Land) मेहनत (श्रम) (Labour) और पूँजी (धन) (Capital) चाहे जिस ढंग से धन उत्पन्न या पैदा किया जाय इन तीनों साधनों की आवश्यकता पड़ेगी। इनके अलावा आज कल दो शक्तियाँ और मानी जाती हैं — प्रबन्ध, साहस (Organisation and Enterprise) इसके पहले कि हम इन शक्तियों पर विचार करें, हमें यह देख लेना चाहिए कि कुछ चुने हुए उदाहरणों में ऊपर शक्तियाँ किस प्रकार भाग लेती हैं।

पहले रूप परिवर्तन द्वारा होने वाली उपयोगिता वृद्धि (Increase)

in utility) के साधनों को ही लीजिए, इस रीति से कच्चा माल पैदा किया जाता है। कच्चा माल बहुधा खेती से होता है। हमारे भारत से ज्यादातर लोग खेती करके ही अपना पेट पालते हैं। अच्छा, इनमें ऊपर बताए साधन या शक्तियाँ किस प्रकार काम आती हैं? बिना भूमि के खेती नहीं हो सकती, और मेहनत करने वाले मनुष्य बिना खेती करेगा ही कौन? लेकिन जमीन और मनुष्य के होने से भी तो खेती नहीं हो सकती। उसके लिए बीज, हल, बैल, खाद आदि की भी आवश्यकता होती है। ये चीजें मनुष्य का धन है, लेकिन अब ज्यादा धन उत्पन्न करने के लिए काम में आने के कारण इनका नाम पूँजी हो जाता है। इससे साफ प्रकट है कि खेती करने के लिये भूमि, श्रम और पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

अब कारीगरी का एक उदाहरण लीजिये। तैयार माल भी रूप परिवर्तन द्वारा ही बनाया जाता है। दर्जी का काम ले लीजिये। वह कपड़े की काट-छाँट करके कोट सीता है। इसमें उसे सीने के लिये बैठने को स्थान (दुकान या मकान) चाहिए, यह भूमि है। उस पर बैठ कर वह सिलाई का काम करता है, इसमें उसे श्रम करना होता है। फिर उसे कपड़ा, सुई, डोरा आदि चाहिये, तभी तो वह कोट तैयार कर सकेगा। ये चीजें वह पहले कमाये हुए धन में बचत करके बचाता है और ये उसकी पूँजी है। इसी तरह से बढ़ई, लोहार, जुलाहे आदि के कार्य पर विचार किया जा सकता है। अतएव तैयार माल में भूमि, श्रम और पूँजी तीनों की आवश्यकता पड़ती है।

अबतक हमने प्रबन्ध और साहस (Enterprise) का विचार नहीं किया है। आजकल के मशीन युग में अकेला दुकेला आदमी धन पैदा करने का काम नहीं करता। सैकड़ों हजारों आदमी एक ही कारखाने में काम करते नजर आते हैं। ऐसी हालत में इस बात की बड़ी ज़रूरत होती है कि कोई आदमी इन हजारों आदमियों के काम की देख रेख करे और यह निश्चय करे कि कितने आदमी कौन सा काम करें, किस प्रकार की भूमि, श्रम और पूँजी लगाई जाय और कहाँ से कच्चा माल मँगाया जाय इत्यादि इन सब बातों के लिये प्रबन्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार आज

कल अमेरिका आदि देशों में खूब बड़े-बड़े खेतों म खेती की जाती है। वहाँ पर भी यह देखना पड़ता है कि खाद कहाँ से मँगाई जाय। कितनी खाद की जरूरत है। पानी का कैसे इन्तजाम किया जाय इत्यादि।

इसके अलावा एक ऐसे व्यक्ति-समूह की जरूरत पड़ती है जो कारखाने में होने वाले या बड़े परिमाण में की जाने वाली खेती से आने वाले लाभ-हानि को सहने का बीड़ा उठाये। मजदूर अपना वेतन ले लेते हैं। प्रबन्ध करने वाला भी अपना तनख्वाह लेता है। भूमि का मालिक केवल लगान मात्र चाहता है और पूँजी देने वाला सूद। इनमें से किसी को हानि-लाभ से कोई मतलब नहीं रहता। कारखाने के चलने या डूबने का जोखिम उस आदमी या कम्पनी पर रहता है जो उसको चलाने का साहस करती है तथा जोखिम उठाती है।

भूमि (Land)

यह तो हमने देख लिया कि उत्पत्ति के पाँच साधन होते हैं, भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध और साहस। अब इन पाँचों पर अलग अलग विचार करना भी जरूरी है। पहले भूमि को ले लीजिये। आमतौर पर इससे पृथ्वी तल का मतलब निकाला जाता है, परन्तु अर्थशास्त्र में भूमि से हमारा मतलब उन सब शक्तियों से रहता है जो प्रकृति से प्राप्त होती हैं। इस तरह से खान से निकलने वाले पत्थर, लोहा, सोना, आदि, जल, मछली, मोती, वायु, सर्दी, गर्मी, रोशनी, जलवायु आदि सब चीजें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। याद रखने लायक दूसरी बात यह है कि प्रकृति का वही हिस्सा भूमि कहलाता है जिसका उत्पत्ति में प्रयोग होता है।

सब जमीन एक सी नहीं होती। कोई बहुत उपजाऊ होती है, कोई कम और कोई बिल्कुल ही नहीं। किसी जमीन की मिट्टी चिकनी होती है अर्थात् उसमें बहुत बारीक कण होते हैं, किसी पृथ्वी में बड़े कण रहते हैं। वह बालूदार कहलाता है। चिकनी और बालूदार मिट्टी के अधिक या कम होने से ही खेतों की मिट्टी कई तरह की हो जाती है। जहाँ तीन भाग चिकनी मिट्टी और एक भाग बालू हो वहाँ खेती अच्छी होती है। बालू का हिस्सा जैसे जैसे बढ़ता जाता है जमीन कम उपजाऊ होती जाती है। नदी या तालाब

के किनारे उस जमीन में जहाँ बरसात में पानी भर जाता है और फिर सूख जाता है, खेती अच्छी होती है। धान तो ऐसी जमीन में बहुत ही होता है। गाँव के किनारे की जमीन में जिसमें प्राय कूड़ा-करकट फेंका जाता है या खाद डाली जाती है, बहुत अच्छी फसल होती है।

लेकिन जमीन की उपजाऊ शक्ति की सीमा होती है। अगर हम किसी उपजाऊ भूमि में खाद वगैरह दिए बिना ही खेती करते चले जायें तो दो तीन साल के बाद वह कम उपजाऊ हो जायगी। जिस प्रकार मनुष्य को आराम की जरूरत होती है और जिस प्रकार बिना खाने के वह काम करने के लायक नहीं रह जाता उसी तरह जमीन को भी खुराक तथा आराम की जरूरत पड़ती है। खुराक पहुँचाने के लिए यह बड़ी जरूरी है कि जमीन खूब गहरी खोदी जाय तथा उसमें खाद वगैरह खूब डाली जाय। खाद की मदद से जमीन अपनी खुराक वायुमंडल से अच्छी तरह से खींच लेती है। इसके अलावा एक ही समय में किसी खेत में बहुत सी पूँजी तथा मेहनत लगा कर उस खेत की उपज बहुत अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। इसकी भी एक सीमा होती है। जिस तेजी के साथ पूँजी व श्रम बढ़ाया जाता है उस तेजी के साथ उपज नहीं बढ़ती अतएव किसी जमीन में पूँजी व मेहनत लगाने की भी हद होती है। व्यापार और कारखानों के काम में भूमि की उपजाऊ शक्ति का ख्याल नहीं किया जाता। कारीगर या कारखाने का मालिक यह देखता है कि जमीन किस जगह है। कारीगर अपनी दूकान बाजार के करीब खोलना चाहता है। मिल मालिक कारखाने को ऐसे स्थान पर चलावेगा जहाँ से खान और बाजार दोनों पास हों। मान लो तुम लोहे का कारखाना खोलना चाहते हो। तुम ऐसी जगह ढूँढोगे जहाँ से लोहे की खान भी पास हो और तैयार माल को बाजार में पहुँचाने का सुभीता भी हो। इन्हीं कारणों से बड़े बड़े शहरों में भूमि का मूल्य या किराया बहुत अधिक होता है।

श्रम (Labour)

यह तो हुई भूमि की बात। अब श्रम को लीजिए। किसान खेती करने में स्वयं भी मेहनत करता है और बैल से भी काम लेता है। लेकिन श्रम-

शास्त्र के अन्तर्गत खेल के कार्य को श्रम में नहीं गिनते। श्रम से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की हुई मेहनत से रहता है। मनुष्य अपने मनोरंजन के लिए फुटबाल, हाकी वगैरह खेल खेलता है। ऐसे खेलों में की गई मेहनत किसी का धन नहीं पैदा करती। अतएव इसको गिनती भी श्रम में नहीं की जाती। अब अगर आपसे कोई पूछे कि श्रम से क्या समझते हो तो आपको कहना चाहिए कि श्रम से हमारा मतलब मनुष्य द्वारा की गई उस मेहनत से रहता है जो किसी धन की उत्पत्ति में लगाई जाती है। श्रम दो तरह के होते हैं —शारीरिक व मानसिक। कुली, मजदूर, लोहार, बढ़ई आदि शारीरिक श्रम करते हैं लेकिन डाक्टर, वकील, जज, मास्टर वगैरह मानसिक श्रम करते हैं। कुछ लोग दोनों तरह के श्रम करते हैं परन्तु अर्थशास्त्र में श्रम के इस भेद को महत्व नहीं दिया जाता। अगर कोई भेद माना जाता है तो वह उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के बीच में होता है। मनुष्य किसी इच्छा की पूर्ति के लिए जो मेहनत करता है वह उत्पादक कहलाती है। उत्पादक और अनुत्पादक मेहनत का ज्ञान करने के लिए मान लीजिए की कोई आदमी बिना मतलब ही एक स्थान की मिट्टी खोद कर दूसरे स्थान पर जमा करता है। ऐसा श्रम अनुत्पादक कहलाएगा। हाँ, अगर पहले स्थान पर मिट्टी का ऊँचा ढेर लगा हो और दूसरे पर गड्ढा हो तो वह श्रम उत्पादक गिना जायगा क्योंकि ऐसा करने से गड्ढा पट गया और किसी के उसमें गिर जाने का डर जाता रहा। अस्तु, उत्पादक श्रम के दो भाग किए जाते हैं। बढ़ई लकड़ी से हल बनाता है किसान खेत में अनाज पैदा करता है और लोहार लोहे से चाकू बनाता है। इस प्रकार का श्रम प्रत्यक्ष उत्पादक श्रम कहलाता है। लेकिन जंगलों से लकड़ी लाने में जो श्रम लगता है अथवा पंडित जो चेलों को पढ़ाने में जो मेहनत करते हैं वह परोक्ष उत्पादक कहलाता है क्योंकि उससे किसी वस्तु विशेष की उत्पत्ति नहीं होती।

श्रम की उपयोगिता (Utility of labour)

जिस प्रकार सब भूमि ऐसी उत्पादक नहीं होती उसी तरह सब श्रम एकसे उत्पादक नहीं होते। श्रम की उत्पादकता कई बातों के ऊपर निर्भर रहती है। मेहनत करने वाला अगर मजबूत, शिक्षित और ट्रेनिंग पाए हुए

हैं तो उसकी उत्पादक शक्ति अधिक होगी। कार्यक्षमता आदमी को मिलने वाले खाने, उसके रहने के स्थान की आबहवा आदि बातों से सम्बन्ध रखती है, इसके अलावा यदि मजदूर गुलाम की तरह काम करते हैं तो उनका श्रम कम उत्पादक हो जाता है। इसीलिए कारखानों में अच्छे कारीगरों और मजदूरों को हिस्सेदार बना लेते हैं। इसी प्रकार खेती में हिस्सेदार होते हैं। अर्थात् खेत में काम करने वालों का हिस्सा बँध जाता है इससे काम करने वाले मन लगाकर काम करते हैं और अधिक से अधिक माल उत्पन्न करने का प्रयत्न करते हैं। चतुरता और बुद्धिमानी भी श्रम को और उत्पादक बनाती है। एक मामूली बढ़ई जिस लकड़ी से एक भद्दा-सा बक्स बना कर तीन चार रुपये को बेचता है एक चतुर बढ़ई उसी से एक अच्छी आलमारी बना कर बेचने से दस पन्द्रह रुपए प्राप्त कर लेता है। जो श्रमजीवी बुद्धिमान नहीं है, जिन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि किस प्रकार सपत्ति की वृद्धि करनी चाहिए, उनका श्रम बहुत कम उत्पादक होता है। उदाहरण के लिए इस देश के मूर्ख और कम बुद्धि वाले बढ़ई लोहार, कुम्हार और जुलाहे को ले लीजिए। ये अब भी उसी प्रकार काम करते हैं जिस प्रकार हजारों वर्ष पहले होता था। यदि ये बुद्धिमान् तथा पढ़े लिखे होते तो दूसरे देशों की बना हुई अच्छी अच्छी चीजों को देख कर ये भी वैसे ही वस्तुएँ बनाने के उपाय सोचते।

श्रम विभाग (Division of Labour)

श्रम की उत्पादकता के सबध में एक बात और जानने योग्य है। पुराने जमाने में आदमी अपनी सारी आवश्यकताओं को पुरा करने के लिए स्वय ही सब काम करता था। वही झोंपड़ी बनाता, वही मछली मारता, वही तीर और धनुष बनाता और वही पहनने के लिए जानवरों को मार कर उनकी खाल खींचता। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ मनुष्य ने परिवार बसा लिया और कई परिवार मिल कर गाँवों में रहने लगे। इसके साथ ही इस बात का ख्याल हुआ कि यदि एक आदमी एक ही काम करे तो और भी अच्छा हो। अतएव एक आदमी केवल अन्न पैदा करता है, एक केवल कपड़ा तैयार करता है इत्यादि। इस प्रकार गाँव के किसान, लकड़हारे

और सुनारे आदि का काम अलग अलग हो जाता है। जैसे जैसे उन्नति हुई एक एक पेशे के कई कई भाग होने लगे। कपड़ा तैयार करने के लिये एक आदमी केवल कपास पैदा करता है, दूसरा कपास को ओटता है अर्थात् रुई से बिनौले अलग करता है, तीसरा सूत कातता है और चौथा केवल कपड़ा बुनता है। इसके बाद इन भागों के भी भाग किये जाते हैं। इस प्रकार से होने वाले श्रम के बटवारे को श्रम विभाग कहते हैं। श्रम विभाग हो जाने से पहले तो कोई आदमी बड़ी जल्दी किसी विभाग का काम सीख सकता है। इसके अलावा श्रम विभाग के अन्तर्गत एक ही काम करते आदमी खूब होशियार हो जाता है। फिर प्रत्येक विभाग में की जाने वाली क्रियाएँ इतनी सरल हो जाती हैं कि उनके करने के लिये मशीन का भली भाँति प्रयोग किया जा सकता है। इन सबका नतीजा यह होता है कि किसी वस्तु की उत्पत्ति करने में खर्च कम पड़ने लगता है। परन्तु श्रम विभाग से कुछ नुकसान भी है। एक ही काम को करते करते वह काम नीरस सा लगने लगता है। उस काम के करने में फिर मन नहीं लगता। यही नहीं यदि वह चाहे कि अब किसी दूसरे के पेशे को अख्तियार कर ले तो वह ऐसा नहीं कर सकता। तीसरे इसके कारण उसे अपने शरीर के किसी एक अंग का ही अधिक उपयोग करना पड़ता है। फलत उसका स्वास्थ्य गिर जाता है। कुछ भी हो श्रम विभाग के कारण श्रमी भारी और दुखदायक कामों के करने से बच जाते हैं और उन्हें अब सप्ताह में केवल ४५-६० घंटे तक काम करना पड़ता है। बाकी समय वे अपनी शिक्षा, मनोरंजन और उन्नति के लिये लगा सकते हैं।

पूँजी (Capital)

हम कह आए हैं कि किसी वस्तु की उत्पत्ति में धन की भी जरूरत पड़ती है। उत्पत्ति के कार्य में जो धन लगाया जाता है उसे हम पूँजी कहते हैं। नोट करने लायक बात यह है कि सब धन पूँजी नहीं कहलाता। उसका वही हिस्सा पूँजी के नाम से पुकारा जायगा जो और सम्पत्ति पैदा करने के काम में आवेगा। उदाहरण के लिये यदि कोई किसान बैठा बैठा अनाज खर्च करता है लेकिन काम नहीं करता, तो उसका अनाज रूपी धन

पूजी नहीं कहा जा सकता। लेकिन अगर वह खाने के साथ खेती भी करता जाता है तो जो अन्न वह खाता है वह पूँजी स्वरूप है। खेत में बीज बोने के दिन और जब अनाज कट कर किसान के घर में आता है इस बीच में कई महीने गुजर जाते हैं। तब तक किसान को खाने पीने को चाहिये। मजदूरी चाहिये, हल, बैल आदि चाहिये। पहनने को कपड़े, रहने को घर तथा औजार वगैरह भी चाहिये। ये सब चीजें पहले से ही इकट्ठी करनी पड़ती हैं। इनमें अन्न, वस्त्र, बैल बधिया, हल फाल, घर द्वार सब कुछ आगया और इन सबकी गिनती पूँजी में करनी चाहिए।

यह स्पष्ट है कि सम्पत्ति पैदा करने के पहले पूँजी लगानी या खर्च करनी पड़ेगी। पूँजी दो तरह से खर्च की जाती है। किसान जो बीज बोने के काम में लाता है वह एक ही बार में खर्च हो जाता है। वह जिस पानी से खेत को सींचता है उसका वह दूसरी बार उपयोग नहीं कर सकता। बढ़ई जिस लकड़ी का हल बनाता है वह फिर उसके काम की नहीं रहती। लोहार जिस लोहे की खुर्पी गढ़ता है वह बिना तोड़े दूसरी चीज बनाने के लिए काम में नहीं लाई जा सकती। कहने का मतलब यह है कि कुछ पूँजी का एक हिस्सा हमेशा के लिये एक दम खर्च हो जाता है। इस हिस्से को चल पूँजी कहते हैं। दूसरी ओर किसान बार बार उन्हीं बैलों, हल, फावड़ा, कुदाली, खुर्पी आदि से काम लेता है। बढ़ई चीजें बनाने के लिए रुखानी, बसूला, आरी आदि से काम लेता है। इसी तरह लोहार का हथौड़ा, घन, धौकनी वगैरह बहुत दिन तक चलते हैं। इन वस्तुओं में खर्च की हुई पूँजी को अचल पूँजी कहते हैं।

पूँजी के उपयोग करने के ढंग पर उसकी उत्पादक शक्ति निर्भर रहती है। यदि बुद्धिमानी के साथ पूँजी लगाई जाती है तो अधिक सम्पत्ति पैदा होगी अन्यथा कम। यदि कोई जमीन बलुई है तो उसमें आप चाहे जितनी खाद डालिए और चाहे जितना पानी दीजिए, गेहूँ की पैदावार कभी अच्छी न होगी। और आपने जो पूँजी उसमें लगाई है उसका आपको पूरा पूरा बदला नहीं मिलेगा। परन्तु उसी पूँजी को अगर आप किसी उपजाऊ जमीन में लगाते तो उसकी उत्पादक शक्ति अवश्य बढ़ जाती। कहने का मतलब

यह कि खेती या व्यापार में जो पूँजी लगाई जाती है, उसके लगाने में यदि बुद्धिमानी, चतुरता और दूरन्देशी से काम लिया जाता है तो पूँजी की उत्पादक शक्ति बढ़ जाती है।

प्रबन्ध (Management)

जैसा कि पहले कहा जा चुका है आजकल के जमाने में भूमि, श्रम और पूँजी के ऊपर प्रबन्ध करने वाले का हाथ रहता है। प्रबन्ध के काम और श्रम में अन्तर है। श्रमी अधिकतर शारीरिक मेहनत करता है और प्रबन्धक को दिमाग़ से ज़्यादा काम लेना पड़ता है। प्रबन्धक उत्पत्ति के लिये सबसे उपयुक्त भूमि को जानकर उस पर आवश्यक योग्यता वाले मज़दूरों को श्रम-विभाग के नियमों के अनुसार लगाता है। उसे नए नए लाभदायक औज़ारों को इकट्ठा करना पड़ता है। वह समय पर हिसाब से कच्चे माल को सस्ते से सस्ते दामों में ख़रीदता है। बाज़ार में लोगों की रुचि के मुताबिक माल बनवा कर वह उस माल को अच्छे से अच्छे दामों में बेचता है। कहने का मतलब यह की प्रबन्धकर्त्ता लोगों की रुचि का ध्यान रखकर, भूमि, श्रम और पूँजी को इस हिसाब और रूप से लगाता है कि कम से कम लागत में अधिक से अधिक वस्तु तैयार हो जाती है और इसको वह सबसे अधिक मुनाफ़े के हिसाब से बाज़ार में बेच देता है।

इसमें शक नहीं कि जो मनुष्य प्रबन्ध करता है। उसमें बहुत से गुण होने चाहिए। वह पढ़ा लिखा हो, होशियार हो, दूरन्देश हो, लोगों से मिलता जुलता हो। बाज़ार के भाव व लोगों की बदलती हुई चाह से वाकिफ़ रहे तथा ऐसा विचित्र फैशन का माल तैयार करावे जिसमें मनुष्य उस माल को सबसे अधिक मात्रा में ख़रीद दें। प्रबन्धकर्त्ता आजकल के विज्ञापन के तरीकों से जानकारी रखता है और उपयोगी तरीके से अपने माल का विज्ञापन दिलाता है। इसके अतिरिक्त वह अपने माल को देशी और विदेशी बाज़ारों में पहुँचाने के लिए सबसे सस्ते और शीघ्र पहुँचाने वाली सवारी का प्रबन्ध करता है। प्रबन्धक का एक उद्देश्य रहता है कि सबसे कम खर्चा में सब से अधिक लाभ करते रहना। यदि किसी मशीन का प्रयोग करने से

खर्च में कमी होती है तो वह मजदूरों का ख्याल किये बिना ही मजदूरों को घटा कर उस मशीन को कारखाने में मँगावेगा।

साहस या जोखिम (Enterprise)

मान लो उत्पत्ति न उपरोक्त चारों साधन मौजूद हैं परन्तु सबको इस बात का शक है कि कार्य शुरू कर देने के बाद उनको भूमि का लगान, श्रम की मज़दूरी, पूँजी पर सूद व प्रबन्धक का वेतन मिलेगा या नहीं। ऐसी हालत में उस समय तक उत्पत्ति का काम शुरू ही नहीं हो सकता जब तक कोई व्यक्ति साहस न करले सबको इस बात का विश्वास न दिला दे कि काम असफल हो जाने पर भी वह लगान, मजदूरी, वेतन, सूद आदि चुकता कर देगा। लेकिन खाली विश्वासभाजन होने से काम नहीं चलता। विश्वास दिलाने वाले की हालत ऐसी होनी चाहिए जिससे सब लोग उसकी बातों का विश्वास कर लें। इसके लिए यह बहुत जरूरी है कि विश्वास दिलाने वाला साहसी मनुष्य धन तथा अपनी बात दोनों का धनी हो। इसके अलावा साहसी को बुद्धिमान तथा दक्ष होना चाहिए, जिससे वह योग्य सहायक व प्रबन्धक को ढूँढ़ सके। यह तो हुए साहसी के गुण। अब देखना चाहिए कि साहसी और उत्पत्ति में हाथ बटाने वाले अन्य व्यक्तियों में कोई भिन्नता है या नहीं। सबसे बड़ा फर्क यह है भूमि के मालिक का लगान, श्रमिक की मज़दूरी, महाजन का सूद और प्रबन्धक का वेतन बँधा हुआ होता है लेकिन साहसी को आने वाली रकम में यह सब काट कर जो बचता है उसी से संतोष करना पड़ता है। यदि कुछ कमी पड़ती है, तो उसे स्वयं अपनी गाँठ से लगाना पड़ता है। यह सब ठीक है लेकिन तिस पर भी किसी मनुष्य या कम्पनी को साहस का बोझा उठाना ही पड़ता है। क्योंकि बिना साहस के न कोई व्यापार चालू किया जा सकता है और न चालू व्यापार बढ़ाया ही जा सकता है।

अभ्यास के प्रश्न

१—उदाहरणों सहित समझाइये कि स्थान परिवर्तन से उपयोगिता की वृद्धि किस प्रकार होती है?

२—दूकानदार और व्यापारी वस्तुओं की उपयोगिता, वृद्धि किस प्रकार करते हैं?

३—समय परिवर्तन से उपयोगिता वृद्धि का उदाहरण दीजिये।

४—क्या किसी वस्तु के विज्ञापन से भी उपयोगिता की वृद्धि होती है ?

५—क्या कोई ऐसी वस्तु है जिसके अधिक उपयोग करने से उसकी उपयोगिता की वृद्धि होती है ?

६—यह समझाइये कि निम्नलिखित व्यवसायों में उत्पत्ति के साधनों का किस प्रकार उपयोग किया गया है —

हलवाई की दूकान, कपड़े की दूकान, सूत कातना, कपड़े बुनना, गौशाला

७—श्रम और मनोरंजन का अन्तर समझाइये। यदि कोई व्यक्ति कविता करता है या गाता है तो उसका कविता करना या गाना श्रम कहलायेगा या मनोरंजन ?

८—उत्पादक और अनुत्पादक श्रम के भेद बतलाइये। यदि कोई विद्यार्थी परिश्रम करने पर भी अपनी परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है, तो उसका श्रम उत्पादक कहलायेगा या अनुत्पादक ?

९—पंडा, ज़मीदार, डाक्टर, पुरोहित, साधु, सिपाही इत्यादि के श्रम किन दशाओं में उत्पादक माने जा सकते हैं ?

१०—भारतीय मज़दूरों की कार्यक्षमता किस प्रकार बढ़ाई जा सकती है ?

११—अर्थशास्त्र की दृष्टि से भूमि की विशेषताएँ तथा महत्त्व समझाइये।

१२—क्या आप के गाँव में भूमि किसानों को काफी परिमाण में मिल जाती है ? यदि नहीं तो कमी के प्रधान कारण क्या हैं ?

१३—चल और अचल पूँजी के भेद समझाइये। निम्नलिखित उद्योग-धंधों की चल और अचल पूँजी लिखिये —

गन्ने की खेती, कपास का कारखाना, मिठाई बनाना, खिलौने बनाना।

१४—प्रबन्धक के कार्य का महत्त्व समझाइये। उसमें किन गुणों की आवश्यकता है ?

१५—उत्पत्ति में जोखिम का क्या स्थान है ? निम्नलिखित व्यवसायों में जोखिम कौन उठाता है —

बटाई पर की जाने वाली खेती, मिश्रित पूँजी वाली कंपनी, कपड़े का कारखाना, चीनी का कारखाना।

१६—उत्पत्ति के अर्थ समझाइये। उत्पत्ति के साधन बताइये। गांव के उद्योग धंधों में इन साधनों के महत्व की तुलना कीजए।

चौथा अध्याय

भारतीय गाँवों की खास पैदावारें

पिछले अध्याय में हम यह देख चुके कि उत्पत्ति करने में किन किन शक्तियों से काम लेना पड़ता है। अब इन शक्तियों के सहयोग से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं के बारे में कुछ जानना आवश्यक मालूम पड़ता है। भारत में नब्बे प्रतिशत से अधिक लोग गाँवों में रहते हैं और सत्तर प्रतिशत से ऊपर मनुष्य खेती करके अपना पेट पालते हैं। अस्तु, यदि खेत के उपज के बारे में ही पहले कुछ विचारा जाय तो अनुचित न होगा। भारत में अधिकतर दो फसलें होती हैं। एक खरीफ कहलाती है और दूसरी रबी। खरीफ की फसल जेठ मास से लेकर कार्तिक तक चलती है और बाकी छै महीनों में अर्थात् कार्तिक से बैसाख तक रबी की फसल होती है।

संयुक्त प्रांत के इलाहाबाद जिले में खरीफ की फसल बोने के पहले खेत में खाद डाल देते हैं। पानी बरसने के बाद खेत एक बार जोत दिया जाता है। खरीफ की फसल में वहाँ ज्वार, बाजरा, मक्का, सावां और कोदो, चावल, अरहर, मूँग, उरद, तिल व तिली बोए जाते हैं। मक्का और ज्वार के लिए खेत अक्सर दो बार जोते जाते हैं। बाजरे के लिए एक ही बार हल चलाने से काम निकल जाता है। ज्वार और मक्का को तो किसान कूँड़ी बनाकर बोते हैं। बाजरा, उरद और मूँग के बीज को बखेर कर बोते हैं। जब वर्षा नहीं होती तब खरीफ में एक दो बार खेतों को सींचने की ज़रूरत पड़ती है और नहीं तो खरीफ की फसल के लिए सिंचाई कोई खास जरूरी नहीं है। अरहर रबी की फसल के साथ बैसाख में काटी जाती है, बाकी सब फसलें भादों और कुआर में काट ली जाती हैं। रबी की फसल

में गेहूँ, चना, जौ, मटर, मसूर, अलसी, सरसों, गन्ना और ऊख बोया जाता है। जिन खेतों में गेहूँ, जौ, सरसों इत्यादि चीजें बोई जाती हैं उनमें खरीफ की फसल नहीं पैदा की जाती बल्कि उन खेतों को एक बार जोत कर बरसात के पहले छोड़ देते हैं। बरसात में उनमें खूब पानी भरता है। गेहूँ वगैरह बोने के पहले फिर ये खेत दो तीन बार जोत दिए जाते हैं। रबी में चना, मटर को तो बखेर कर बोते हैं बाकी सब अनाज कूंडी द्वारा बोए जाते हैं। रबी की सब फसलें बैसाख व अखीर तक कट जाती हैं। अस्तु इस प्रकार से इलाहाबाद जिले में पैदा होने वाले अन्नों में चावल, गेहूँ, चना, ज्वार, बाजरा, जौ, मकई मुख्य हैं। दालों में मूंग, उड़द, अरहर, मटर, मसूर आदि पैदा होता है। तेलहन की वस्तुओं में तिल, सरसों, व अलसी प्रधान हैं। इसके अलावा गन्ना और आलू की खेती होती है।

भारतीय भूमि की पैदावार की कमी

इलाहाबाद जिले में जो उपज पैदा होती है, उनमें मसा, मसाला, कपास, जूट, सन, चाय, तमाकू व पशुओं के चारे का नाम जोड़ दिया जाय तो भारत की सारी मुख्य उपज गिनती में आ जाती है। खेती से उत्पन्न पदार्थों की दृष्टि से हिन्दुस्तान संसार भर में तीसरा गिना जाता है। संसार भर की सन की माँग तो भारत ही पूरी करता है लेकिन गेहूँ, कपास, चावल आदि की पैदावार में भी यह अच्छा स्थान रखता है। लेकिन यहाँ के निवासियों की आवश्यकताओं का ध्यान में रखकर सोचने से यहाँ की उपज कम मालूम पड़ती है। यही नहीं, तुलना करने से पता चलता है कि प्रति एकड़ हम जितना गेहूँ, जौ, कपास, गन्ने आदि की उत्पत्ति करते हैं उतनी ही जमीन में उससे कई गुना उपज अमेरिका और रूसवाले पैदा करते हैं। हमारे यहाँ की एकड़ जितना गेहूँ पैदा होता है उसका चौगुना अमेरिका में और इससे भी अधिक रूस में पैदा किया जाता है क्योंकि वहाँ पर दो मील मील दो दो मील के खेतों में खेती की जाती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ से आठ से दस गुना और बढ़िया गन्ना जावा और हवाई द्वीप में उगाया जाता है। हमारे यहाँ की रुई की खेती से भी अधिक माल अमेरिका वाले पैदा कर लेते हैं। चाहे जो उपज ले लीजिए हर एक में हम और देशों से

पिछड़े हुए पाये जाते हैं। यह बात नहीं कि हमसे भी पिछड़े हुए देश नहीं हैं लेकिन ऐसे देश अभी ताजे ताजे ढूँढ निकाले गए हैं अथवा वहाँ भारत की तरह की उपजाऊ ज़मीन नहीं है। और हमें तो अपने यहाँ की तुलना उन देशों से करनी चाहिए जो हमारी ही तरह के हैं।

पैदावार की कमी के कारण

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि आखिर किस कारण से भारत में और देशों की अपेक्षा उपज इतनी कम होती है। यह हम जानते हैं कि खेतों में उत्तम खाद देनी चाहिए, अच्छे बीज बोने चाहिए, उत्तम औजारों से खेत को जोतना बोना चाहिये तथा खेत की सिंचाई का पूरा प्रबन्ध रखना चाहिए। हमारे किसानों को पहले तो पर्याप्त खाद मिलती नहीं। यह कुछ आम रिवाज सा हो गया है कि गोबर की उपली पाथ दी जाती है। ये उपली या कंडे ईंधन की जगह जलाने के काम में लाए जाते हैं। यदि इस गोबर से उपली पाथने की जगह खाद बनाई जाए तो बहुत अधिक फायदा हो। इसके अलावा खाद डालने के पहले किसान खाद को खेतों में पहले से ढेरी लगा कर धूप में छोड़ देते हैं जिससे खाद का बहुत सा तत्व नष्ट हो जाता है। खाद के अलावा किसान जिन बीजों को बोते हैं वे स्वस्थ और अच्छी हालत में नहीं होते। फलस्वरूप उपज कम होती है। फिर किसान के बैल और औजारों का ही लीजिए। बैल मरियल तथा रोगी होते हैं, उनसे खूब कसकर काम नहीं लिया जा सकता। इसी प्रकार कहीं भारी हलों से काम लिया जाता है तो कहीं हल्के हल से। इसके अलावा हल में खेत खोदने के लिए जो लोहे का फल लगा रहता है वह कहीं अधिक नुकीला होता है और कहीं साधारण। सबसे बड़ी बुराई तो यह है कि हमारे हल ज्यादा गहराई तक नहीं खोद सकते और न मिट्टी को ही अच्छी तरह पलट सकते हैं। इसलिए जो पौधे उगते हैं उन्हें ऊपर की ही सतह से अपनी खुराक खींचनी पड़ती है। नीचे की जमीन ऐसी ही पड़ी रहती है। इससे भी पैदावार अच्छी नहीं होती है। यदि बढ़िया और उत्तम ढंग के हलों से काम लिया जाय तो खेत अधिक गहरे खोदे जा सकते हैं। ऐसा करने से नीचे की बढ़िया मिट्टी ऊपर आ जायगी और पैदावार अच्छी हो सकती है।

खेती करने के काम में सिंचाई का स्थान भी काफी ऊँचा है। लेकिन हमारे देश के कितने भागों में तो सिंचाई के पर्याप्त साधन ही नहीं हैं। हमारे संयुक्त प्रान्त में नहरों का इन्तजाम है। नहरों से आबपाशी करने के लिए किसानों को खेत के हिसाब से दाम चुकाने पड़ते हैं। यहाँ पर पानी का बड़ा नुकसान होता है पहले किसान खेतों में पानी पहुँचाने के लिए जो नालियाँ बनाते हैं वे इतनी बुरी हालत में होती हैं कि पानी फूट-फूट कर बाहर निकल जाता है। खेतों में क्यारियाँ नहीं बनाई जातीं तथा सिंचाई ठीक तरह से नहीं होती है। चूंकि नहर से आबपाशी करने की कीमत का पानी के परिमाण से कोई सम्बन्ध नहीं रहता इसलिए जरूरत से ज्यादा पानी खेतों में दिया जाता है जिससे खेतों की फसल को बड़ा धक्का पहुँचता है। जिस प्रकार कम सिंचाई से फसल को धक्का पहुँचता है वैसे ही अधिक सिंचाई से भी उपज खराब हो जाती है। यदि उचित परिमाण में थोड़ी-कम सिंचाई की जाय तो फसल बहुत अच्छी होवे। और यह जरूरी है कि किसान इस बात का ज्ञान प्राप्त करें कि किस फसल के लिए कितने पानी की जरूरत है।

जिस तरह से मनुष्य बिना आराम किए लगातार काम नहीं कर सकता उसी प्रकार जमीनों से भी लगातार वैसे ही फसल नहीं पैदा की जा सकती। प्रायः जब एक फसल पैदा हो चुकती है तो जमीन में कुछ तत्वों की कमी पड़ जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए समय की आवश्यकता होती है अर्थात् फौरन ही यह कमी ठीक नहीं की जा सकती। इसलिए कितने ही एक फसल के बाद उस खेत में कुछ नहीं बोते अर्थात उसे परती छोड़ देते हैं। ऐसा करने से कुछ महीने में जमीन उन पदार्थों को, जो उससे निकल जाते हैं, वायु मंडल द्वारा फिर से खींच कर जमा कर लेती है। यह कार्य तो ठीक है लेकिन इससे जमीन बेकार/पड़ी रहती है। दूसरे भूमि को केवल परती छोड़ देने से ही खोए हुए सब तत्व वापस नहीं आ जाते। अगर खाद दी जाय तो इन तत्वों की उचित पूर्ति हो सकती है। खाद देने का उचित तरीका तो यह होगा की परती छोड़ी हुई भूमि में बराबर दूरी पर फुट डेढ़ फुट गहरे गड्ढे खोद कर उनमें कूड़ा-कचरा-गोबर भर भर कर

उ है ढक देवे। इससे साल भर में खाद बन कर जमीन में मिल जायगी। लेकिन अब तो विज्ञान के धुरंधर विद्वानों ने यह ढूँढ निकाला है कि किस फसल के बाद कौन कौन से तत्व नष्ट हो जाते हैं। इसका सम्बन्ध फसलों के हेर फेर से जोड़ा जा सकता है। प्राय किसान फसलों को हेर फेर से बोते हैं लेकिन वे उपरोक्त बताए सिद्धान्त को अच्छी तरह से नहीं समझते। किसी फसल के बाद जमीन के सब तत्व तो निकल ही नहीं जाते और न हर एक फसल से वही तत्व नष्ट होते हैं। इसलिए अगर किसी फसल के बाद ऐसी फसल बोई जाए जिसमें उन्हीं तत्वों की जरूरत पड़े जो कि अभी जमीन में मौजूद हैं तो बहुत अच्छा हो। चूंकि खोए हुए तत्वों से अब हमारा कोई मतलब नहीं रहता इसलिये जमीन उनको अच्छी तरह से वायु मडल के द्वारा सोख सकती है इससे तीसरी बार हम फिर से पहला फसल को बो सकेंगे।

उदाहरण के लिये मक्का के बाद गेहूँ, ज्वार के बाद जौ, मसूर, मटर या अलसी, कपास के बाद मक्का बोई जा सकती है। गेहूँ के साथ साथ दालें या तेलहन वस्तुएं बोई जा सकती हैं।

उपज में कमी होने का दूसरा कारण है किसानों में शिक्षा का अभाव इसके अलावा वे निर्धन हैं। अतएव अच्छी खातों के ऊपर खर्च नहीं कर सकते। पैसा हो भी तो क्या करें? बिना उपयुक्त शिक्षा पाए वह अच्छी तरह व्यय नहीं कर सकता। यदि किसान पढ़ा लिखा हो तो उसे यह भली भाँति समझाया जा सकता है कि कैसी खाद डालनी चाहिये, कैसे फसलों के हेर फेर से परती भूमि छोड़ने की आवश्यकता हटाई जा सकती है या अधिक पानी डालने से कौन से नुकसान होते हैं।

खेतों का छोटे छोटे और दूर-दूर होना
(Fragmentation of Land Holdings)

इन बुराइयों के अलावा एक और कमी है। भारतवर्ष में बहुत से खेतों का क्षेत्रफल एक एक दो-दो एकड़ भी नहीं है। कितने किसानों के खेत इससे भी छोटे होते हैं। किसी किसी का क्षेत्रफल तो आधा ही एकड़ होता है। अथवा इससे भी कम। इसके अलावा अनेक किसानों के पास बहुत से

खेत होते हैं। लेकिन वह दूर दूर होते हैं। इससे किसानों को बहुत हानि होती है। छोटे खेतों में अच्छे अच्छे हलों और औजारों से काम नहीं लिया जा सकता। हलों को खेत में घुमाने में ही बहुत सी भूमि बेकार चली जाती है। इन सब बातों से किसानों में लड़ाई झगड़ा शुरू होता है और आए दिन अदालत में दावा किए जाते हैं। ऊपर इस बात का जिक्र आया है कि खेतों का दूर दूर होना बुरा है। खेतों के एक जगह न होने के कारण एक खेत से दूसरे खेत में पानी ले जाने में बहुत सा समय व्यर्थ जाता है। जोताई-बोआई के अवसर पर दो चार घंटे की देर होने से ही नुकसान का डर रहता है। यदि खेत एक जगह पर हो तो ऐसे समय में देर होने का डर नहीं रहता। फिर सिंचाई के समय एक ही समय में सब खेतों में पानी नहीं दिया जा सकता। अगर कोई नहरों से पानी लेकर कोई किसान अपने खेत सींचता है तो नहर से पानी लाने में बड़ा खर्च और असुविधा पड़ती है। यदि खेत एक जगह हो और कुएँ से सिंचाई की जाय तो एक ही बार में सब जगह पानी पहुँच जाय। खेतों के दूर रहने से एक ही कुआँ काम नहीं देता और दूर दूर से पानी लाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। फिर यह सबको मालूम है कि जब फसल तैयार होने लगती है तो उसकी रखवाली की बड़ी जरूरत पड़ती है। यदि रखवाली न की जाय तो चिड़ियाँ, तोते, गाय, बकरी वगैरह पशु और पक्षी खेत को साफ कर दें। लेकिन अब किसान का कोई खेत गाँव के इस कोने पर है और कोई उस कोने पर तो रखवाली ठीक तौर पर नहीं की जा सकती। खेतों के एक जगह होने से एक ही आदमी सारे खेत की देख रेख कर सकता है और बहुत से रखवालों की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा पैदावार के मारे जाने का डर भी कम हो जाता है।

इसके अलावा खेत पास हों तो एक ही आदमी खेती के बहुत काम सम्भाल लेवे। हरवाहे आदि काम करते रहते हैं, अकेला आदमी सब देख भाल कर लेता है। दूर दूर खेत होने से नौकर ठीक काम नहीं करते और अकेला आदमी सब जगह समय से ठीक देख नहीं पाता है। इससे खर्च भी अधिक हो जाता है और पैदावार की भी हानि होती है। फिर दूर दूर की दौड़ धूप में शरीर को भी कष्ट होता है। एक जगह खेत होने से शरीर को

भी आराम मिलता है। आदमी ही नहीं बैलों को भी आराम मिलता तथा बटाइ, ढोआई इत्यादि में भी आसानी रहती है। और आपस में दूसरे किसानों से होने वाली लड़ाइयाँ भी कम हो जाती हैं।

ऊपर कहे बुराइयों के कारण यह जरूरी है कि ये हानियाँ दूर की जायँ इसका सीधा सा उपाय यह है कि हरेक गाँव में या कई गाँवों में मिलाकर सब खेतों का मूल्य अदाजा जाय और एक किसान के खेतों का जितना मूल्य हो उतने उतने मूल्य के खेत एक स्थान में एक चक में कर दिए जायँ और भविष्य के लिये उनका छोटे छोटे टुकड़ों में बाँटा जाना बंद कर दिया जाय। जहाँ एक ही परिवार के दो तीन आदमियों के पास कई छोटे छोटे खेत हों, वहाँ पर बेहतर होगा यदि उनमें समझौता करा कर वे खेत एक ही आदमी को दिलवा दिए जायँ। दूसरे आदमियों को उनके हिस्से का रुपया मिल जायगा। कई जगह ऐसा प्रयत्न सफलतापूर्वक किया जा चुका है और दूसरी जगह भी ऐसा ही उपाय किया जा सकता है। सहकारी समितियों द्वारा खेतों की चकबंदी कैसी की जा सकती है यह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

गाँवों में बहुत से किसान ऐसे हैं जिनके पास सब खेतों का क्षेत्रफल इतना कम है कि यदि वे चकबंदी द्वारा एक चक में भी कर लिये जायँ तो भी किसी से हानि होना निश्चित है। जिन किसानों के पास तीन चार एकड़ से कम क्षेत्रफल के खेत हैं उनको खेती से इतनी आमदनी नहीं हो सकती कि वे उससे अपने कुटुंब का जीवन निर्वाह कर सकें। ऐसे किसानों की संख्या प्रत्येक गाँव में काफी अधिक रहती है। इनकी दशा तो तब ही सुधर सकती है जब गाँव के सब किसान मिलकर एक सहकारी समिति बना लें और सामूहिक रूप से खेती करें। इस प्रकार की सहकारी समिति का संगठन कैसे किया जा सकता है, यह किसी अगले अध्याय में बतलाया जायगा।

खेती में क्या करना पड़ता है?

आप हिन्दोस्तान के खेतों की खास फसलें, उनके कम होने के कारण और इन कारणों को दूर करने के उपाय तो जान गए। अब हम आपको

सद्दर में यह भी बता देना चाहते हैं कि आखिर खेती करने के लिए करना क्या क्या पड़ता है अथवा भारत के किसान किस प्रकार खेती करते हैं। यह हम शुरू में ही बता चुके हैं कि भारत में अधिकतर दो फसलें होती हैं। एक खरीफ़ की फसल कहलाती है और दूसरी रबी की। पहली बरसात के शुरू से चल कर दिवाली तक जाती है और दूसरी दिवाली से होली तक में तैयार होती है। अस्तु, वर्षा आरम्भ होने से पहले किसान खेत में जगह जगह खाद की ढेरियाँ लगा देता है। फिर जब पानी दो तीन दिन बरस कर रुक जाता है तब पहले खेत को जोत दिया जाता है और खाद को फावड़े से फैला कर पटेला चला कर खेत बराबर कर देते हैं। इससे बीज मिट्टी में दब जाते हैं और चिड़िया इन्हें चुग नहीं सकतीं। खरीफ़ की फसल पानी बरसने के चार-पाँच दिन में ही बो दी जाती है ताकि कहीं जमीन सूख न जाय अथवा पानी फिर बरसने लगे। इस फसल में मक्का, बाजरा, कपास, उरद, मूँग, अरहर, अरंडी, तिल, सन, धान इत्यादि चीजें बोई जाती हैं। मक्का व ज्वार के खेत अक्सर दो बार जोते जाते हैं। कपास का बीज बोने के पहले खेत तीन चार बार जोता जाता है। अन्य फसल बोने के पहले एक दो बार जोतकर खेतों को छोड़ देते हैं। रबी की फसल में बीज बोने से पहले खेतों को दो तीन बार जोतना और उन पर पाटा चलाना पड़ता है। रबी में गेहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों, अलसी इत्यादि चीजें बोई जाती हैं। बीज बोने के दो तरीके हैं। कुछ फसलों के बीज हाथ से खेत में छितरा कर फेंके जाते हैं जैसे बाजरा, उड़द, मूँग, चना, मटर आदि के बीज। मक्का, ज्वार, कपास आदि के बीज कूँडों के जरिए या नली के जरिए बोए जाते हैं। कूँड की बोवाई में हल के द्वारा जो कूँड खुदता जाता है, उसमें एक आदमी दाना छोड़ता जाता है। नली की बोवाई में हल के पीछे एक लम्बा पनाली दार बाँस बँधा रहता है। एक आदमी हल चलाता जाता है और दूसरा पोले बाँस में दाने छोड़ता चलता है जिन खेतों की मिट्टी भुरभुरी होती है उसमें कूँड की बोवाई की जाती है। जिस जमीन में नीचे नमी और ऊपर खुश्की होती है उसमें नली की बोवाई होती है।

बोवाई के बाद सिंचाई की बारी आती है। अगर पौधों को पानी न मिले

तो वे सूख जाय और उपज मारी जाय। यों तो खरीफ की फसल में सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती क्योंकि बोवाई के बाद कई महीने तक बरसात होती है। लेकिन जिस साल वर्षा नहीं होती उस बार खरीफ की फसल में और रबी की फसल में तो हमेशा ही सिंचाई करनी होती है। जहाँ नदियाँ हैं वहाँ पर तो सिंचाई के लिए नहरें खोद दी गई हैं। लेकिन सब जगह तो नदियाँ होती नहीं। वहाँ पर अधिकतर कुओं से सिंचाई की जाती है। मोट द्वारा कुओं से पानी निकालते तो सब ने देखा होगा। इसमें चमड़े का बड़ा डोला होता है जो कुएँ में रस्सी बाँध कर डाला जाता है। इस मोट को कुएँ से खींचने का काम बैलों से लिया जाता है। एक आदमी बैलों को हाँकता हुआ दूर तक ले जाता है जिससे मोट ऊपर खिंच आता है। एक दूसरा आदमी कुएँ पर रहता है जो मोट के ऊपर आ जाने पर उसमें से पानी उड़ेल लेता है। पानी नालियों के द्वारा खेत में पहुँच जाता है। जहाँ किसी तालाब से किसी ऊँचे खेत में पानी पहुँचाना होता है, वहाँ दो आदमी एक डौरी में पानी भर कर ऊपर फेंकते हैं, कहीं कहीं रहट से सिंचाई होती है। इसमें एक चरखी खम्भों के सहारे कुएँ की जगत पर लगाई जाती है। चरखी पर बँधी हुई एक रस्सी में बहुत से डोल बंधे रहते हैं। एक डोल भर कर ऊपर आता है तो दूसरा कुएँ में जाता है। इसमें एक ही आदमी बैल हाँकने को रहता है।

सिंचाई के अलावा किसान को खुर्पी से पौधों के आसपास उगने वाली घास को खोदकर फेंकना पड़ता है। इसको निराई कहते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो फसल के पौधों का खाना घास वगैरह खा ले क्योंकि वह भी पौधों की तरह जमीन से खाना लेती है। बरसात में तो बड़ी जल्दी घास फूस जम जाती है। इसलिए किसान दस पन्द्रह दिन में निराई करता है। रबी की फसल में निराई की कम जरूरत पड़ती है।

जब फसल के दाने पक कर तैयार हो जाते हैं तो किसान हँसिया से काट कर गेहूँ, चना आदि को खलिहान में ले आता है। खलिहान उस लिपी पुती जगह को कहते हैं, जहाँ फसल साफ की जाती है। फसल के ऊपर बैल चला कर पहले पौधों को माड़ा जाता है जिससे भूसा और अनाज के दाने अलग हो जाय। माड़ने के पश्चात् हवा चलने पर उड़ौनी की जाती

है। एक ऊँची निपाई पर से टोरी में भरकर माड़े हुए अनाज को नीचे गिराते हैं जिससे हलका होने के कारण उड़कर भुस दाहिने अलग जा गिरती है। इसके बाद किसान अनाज और भुस को अपने घर ढो ले जाता है।

ग्रामीण उद्योग-धंधे

खेती के सम्बन्ध में हमने और सब बातों पर विचार कर लिया, परन्तु यह नहीं ख्याल किया कि खेती करने में किसान बारहों महीने काम करता रहता है अथवा उसे कभी खाली भी बैठना पड़ता है। भारत में किसानों को आम तौर पर चार महीने न लेकर छै तक बेकार रहना पड़ता है। दूसरे महीने में तो उनका किसी तरह काम चल जाता है परन्तु बेकारी के समय के लिये वे कुछ बचा कर नहीं रख सकते। अतः उन्हें किसी ऐसे उद्योग धंधे की आवश्यकता रहती है जो या तो खेती करने में सहायता पहुँचावें अथवा जो खेती पर निर्भर हों। उद्योग धंधे न तो ऐसे होने चाहिये कि उन्हें छोड़ देने पर उनमें लगी हुई पूँजी अकड़ी पड़ी रहे और न ऐसे होवें जिनमें किसी प्रकार की विशेष शिक्षा की जरूरत पड़े, उद्योग-धंधे ऐसे होने चाहिए जो मौके मौके पर चालू किये जा सकें जैसे चर्खा कातना, लकड़ी व मिट्टी के खिलौने बनाना, तार के पिन्जड़े बनाना, साबुन बनाना, हाथ का कागज बनाना, चावल कूटना, गुड़ बनाना, दाल दलना इत्यादि। इस दृष्टि से किसानों के लिए एक सुन्दर उद्योग पशुपालन का है। गाय भैंस पालने से न केवल दूध घी-दही का व्यापार होता है, बल्कि साथ ही साथ गाय भैंस के बच्चे खेती के काम में आते हैं और गाय का गोबर और मूत्र खाद के काम आता है। बकरी भी पाली जा सकती है। बकरी का दूध पी लिया जाय और बकरे बकरी बेचे जावें। काश्मीर, पंजाब, राजपूताना तथा अन्य ठंडी जगहों में भेड़ पालने तथा ऊन उत्पादन का काम किया जा सकता है। मुर्गी पालने और बच्चे तथा अण्डे बेचने का काम भी अच्छा है।

खेती के साथ में कम खर्च के साथ एक छोटा सा बगीचा लगाया जा सकता है जिसमें तरकारी, भाजी या फल-फूल पैदा किए जा सकते हैं। यदि किसान खर्चा भी न वेच सके तो वह बाग को ठेके पर उठा सकता है। यदि गुलाब के फूल लगाए जावें तो गुलाब जल और गुलकन्द बनाना कठिन

नहीं होना चाहिये। शहद की मक्खी को पाल कर शहद उत्पन्न किया जा सकता है। शहतूत के वृक्ष लगा कर रेशम के कीड़े पाले जा सकते हैं। अंडी की पैदावार वाले प्रदेश में अंडी के कीड़े पाले जा सकते हैं। इनसे प्राप्त रेशम भी बेचा जा सकता है और उससे धागे भी बुने जा सकते हैं। खेती के अयोग्य जमीन पर पेड़ लगा देने से लकड़ी मिल सकती है। इसके अलावा किसान रस्सी बाटने, टोकरी बनाने, चटाई बुनने, पंखा बुनने आदि का काम भी बखूबी कर सकते हैं। अगर गाँवों में बिजली पहुँच जाय और उपयुक्त छोटी मात्रा के उद्योग धंधे खोल दिए जाय तो किसान अपने बेकारी के समय में इन धंधों में भी काम कर सकता है। अगर उन्हें कुछ शिक्षा तथा सहायता व सलाह मिले तो वे स्वयं भी मिल-कर ऐसे धंधे कर सकते हैं।

ऊपर हमने केवल संक्षेप में यह बताया है कि किसान अपनी बेकारी के दिनों में कौन से काम कर सकता है। अगले अध्याय में हम इन धंधों तथा जूता बनाने का काम, लकड़ी के काम, लोहे के काम, मिट्टी के बर्तन बनाने के धंधे आदि के बारे में और खुलकर बतायेंगे।

अभ्यास के प्रश्न

१—शहर में रहने वाले अपने एक मित्र को पत्र लिखो और उसमें अपने गाँव की खरीफ की फसलों का वर्णन करो।

२—तुम्हारे गाँव में इस वर्ष रबी की कौन सी फसलें कितने रकबे में बोई गई हैं? अपना उत्तर देने में पटवारी के कागजों से सहायता ले सकते हो।

३—तुम्हारे गाँव में इस वर्ष गेहूँ की सबसे अच्छी फसल किस किसान के खेत में हुई? उस किसान से यह जानने का प्रयत्न करो कि एक एकड़ में कितना गेहूँ इस वर्ष उत्पन्न हुआ।

४—तुम्हारे गाँव में इस वर्ष गेहूँ की सबसे खराब फसल किस किसान के खेत में हुई? उसकी फसल खराब होने के क्या कारण थे?

५—तुम्हारे गाँव में जिन हलों का उपयोग किया जाता है उसका सचित्र वर्णन करो। ये हल कितनी गहराई तक जमीन खोदते हैं?

६—गहरी जोताई के लाभ समझाइये और यह बतलाइये कि आपके गाँव में कौन से नए हल का उपयोग विशेष रूप से लाभदायक होगा।

७—अपने गाँव के सिंचाई के तरीकों का वर्णन कीजिये। उनमें किन सुधारों की आवश्यकता है?

८—गोबर की खाद का महत्व समझाइये। गोबर की उपला बनाकर जला देने से जो हानियाँ हो रही हैं, उनको बतलाइये।

९—आपके गाँव में फसलों का हेरफेर किस प्रकार का होता है? इस प्रथा में क्या कोई सुधार की आवश्यकता है?

१०—खेतों के दूर-दूर पर छोटे छोटे टुकड़ों में बटे हुए होने से जो हानियाँ होती हैं उनका दिग्दर्शन कीजिये।

११—आपके गाँव में सब से बड़े खेत का रकबा और सबसे छोटे खेत का रकबा लिखिये। साधारणतः कितने एकड़ रकबे के खेत आपके गाँव में अधिक हैं?

१२—अपने गाँव में ऐसे किसानों का पता लगाइये जिनके पास ४ एकड़ से कम रकबे के खेत हों। उनकी एक वर्ष की आमदनी का पता लगाइये और यह जानने का प्रयत्न कीजिये कि वे अपना जीवन निर्वाह बराबर कर पाते हैं या नहीं।

१३—आपके गाँव के किसान उत्तम बीज प्राप्त करने के लिए किस प्रकार और कितना प्रयत्न करते हैं? यदि सब किसान उत्तम बीज बोने लगें तो आपके गाँव की फसलों की उपज में कितनी वृद्धि हो सकती है?

१४—अपने गाँव की किसी फसल की मँडाई का वर्णन कीजिये।

१५—आपके गाँव में कृषि की दशा क्यों खराब है? उसे सुधारने के लिये आप क्या उपाय करेंगे?

१६—आपके गाँव के किसान प्रति वर्ष साधारणतया कितने दिन बेकार रहते हैं? इन दिनों में क्या काम करते हैं?

१७—अपने गाँव के घरेलू उद्योग धंधों का वर्णन कीजिए। गाँव वालों के लिए उनका क्या महत्व है?

पांचवाँ अध्याय

घरेलू उद्योग-धंधे (Cottage Industries)

घरेलू उद्योग धंधे की आवश्यकता

खेती पर तो हम पूरी तरह विचार कर चुके। किन्तु केवल खेती से उत्पन्न वस्तुओं से हमारा काम न कभी चला और न चलता। पहले हमारे देश के उद्योग धन्धों का नाम योरप तक में फैला था। परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी की उल्टी नीति तथा इंगलैंड में बड़े बड़े कारखाने खुल जाने से कारण हमारे कारीगरों को धक्का पहुँचा। अतएव वे गाँव और खेती की ओर झुक पड़े। अधिक खेती के द्वारा इतने अधिक लोगों का पालन न हो सका और उनका रहन सहन गिर गया। तभी से बराबर अन्य उद्योग धंधों और खासकर ग्रामीण घरेलू उद्योग धंधों की आवश्यकता बनी रहती है।

वैसे तो हमको अनेक तरह का अन्य माल तैयार करना पड़ा है अर्थात् दस्तकारी और उद्योग धंधों का कार्य अख्तियार करना पड़ता है। भारत में कुछ बड़े बड़े कारखाने खुले हैं। कुछ लोगों का कहना है कि अगर इन कारखानों की संख्या बढ़ाई जाय तो लाखों को काम भी मिले और देश में मिलों से तैयार माल भी मिले। परन्तु पिछले सौ साल में जितने बड़े उद्योग धंधे खुले हैं उनमें बीस लाख से अधिक मजदूर काम नहीं करते। इन उद्योग धंधों को बढ़ाने के रास्ते में अनेकों कठिनाइयाँ हैं और अगर वे सब दूर भी हो जाय तो हमारा मतलब पूरा नहीं होगा। खेती से ही रोजी कमाने वाले बहुत से किसानों को इन धंधों में काम नहीं मिल सकता। इसलिए छोटी मात्रा के और खासकर घरेलू उद्योग धंधे ही उन के लिए उपयुक्त हैं। इनके अलावा कारखानों में मिलने वाली मजदूरी इतनी अधिक नहीं है कि गाँव के लोग शहर की तकलीफें और खर्च का सहन के लिए तैयार हो जायँ और फिर परदा प्रथा के कारण सभी औरतें बाहर जाकर काम नहीं कर सकतीं। उनके लिए घरेलू उद्योग धंधे ही सब से उत्तम हैं।

जात-पाँत के भेद के कारण जुलाहे, कुम्हार, चमार, लोहार आदि अपने पुरखों का ही काम करते हैं। और जैसा कि पिछले अध्याय में बताया था, चार छै महीने निठल्ले बैठे रहने वाले किसानों के लिये यही धंधे ठीक हैं।

कुछ हिन्दोस्तानी उद्योग-धंधे

हिन्दोस्तान में प्रचलित घरेलू उद्योग धंधे अनेकों हैं। लाख जो कि एक प्रकार के वृक्ष का गोंद है तथा जो वारनिश करने और मोहर लगाने के काम में आता है अब बड़े पैमाने में तैयार होने लगी है। पहले यह घरों में ही साफ की तथा बनाई जाती थी। शहद और मोम की तरफ लोगों का अधिक ध्यान नहीं गया है तब भी कुछ जंगली और पहाड़ी कौमें इस काम को करती हैं। साबुन फैक्टरी में भी बनता है और घरों में भी बनाया जाता है। बाजार में आपको घरेलू बने हुए बहुत से साबुन मिल [illegible] हाथी दाँत का कारीगरी में तो भारत के शिल्पी मशहूर हैं। हाथी [illegible] जितना बढ़िया और उत्तम काम होता है वह प्राय अफ्रीका के [illegible] पर होता है। दिल्ली, मुर्शिदाबाद, मैसूर, ट्रावनकोर वगैरह इस [illegible] कारीगरी के लिये मशहूर हैं। रेशमी कपड़े का काम अब [illegible] गया है। जापानी और बनावटी रेशम के कारण भारत के [illegible] बिल्कुल मारा गया। तब भी भागलपुर आदि स्थानों में [illegible] कपड़ा हाथ से तैयार किया जाता है। उत्तरी हिन्दुस्तान [illegible] काश्मीर में उम्दा और बढ़िया ऊनी कपड़े बनते हैं। [illegible] कारखाने खुल गये हैं तब भी मोटे कम्बल, दरियाँ, पट्टू [illegible] है। काश्मीर के शाल बहुत मशहूर हैं। कारचोबी [illegible] उत्तर में बड़ी उन्नत दशा में है। तम्बाकू, काली मिर्च [illegible] करना, सिरका डालना, सत निकालना, डबलरोटी आदि [illegible] वगैरह काम घरेलू उद्योग धंधों में गिने जाते हैं। [illegible] उद्योग धंधों का वर्णन करते हैं।

बरतन बनाना

इस प्रान्त में बरतन बनाने का काम [illegible]

चमकुट और लोहा के बड़े अच्छे अच्छे बरतन बनाए जाते हैं। बरतन बनाने का काम करने वालों को ठठेरा कहते हैं। मुरादाबाद के कलई के बरतन बड़े मशहूर हैं। अब तो बरतन बनाने का काम बहुत बड़े पैमाने पर किया जाने लगा है। धनी आदमी सैकड़ों बरतन बनाने वालों को नौकर रख लेते हैं और खूब तादाद में बरतन तैयार करते हैं। यह तो हुआ धातु के बरतनों का हाल। अब मिट्टी के बरतन के बारे में सुनिये। कुम्हार और कुम्हार के चाक से तो हर कोई वाकिफ होगा। तुमने कुम्हार को अपना पत्थर की चाक घुमा कर उस पर रक्खी मिट्टी से सकोरा, करई, हँडिया, मटकी, घड़ा बनाते तो देखा ही होगा। वह किस सफाई के साथ अपनी उँगलियों को नचा कर अच्छी अच्छी चीजें बना लेता है। हर एक गाँव में कुम्हार होता है। बनारस की तरफ मिट्टी के चिकने काले बरतन बनाए जाते हैं जो बड़े नफीस होते हैं।

चटाई और टोकरा बनाना

बरतन के अलावा कलकत्ते की तरफ बड़ी उम्दा चटाइयाँ बिनी जाती हैं। ये चटाइयाँ खूब पतली बिनी हुई रहती हैं। संयुक्त प्रान्त में अकसर ताड़ के पत्तों की चटाइयाँ बुनी जाती हैं। ये कुछ भद्दी और कमजोर होती हैं। चूँकि इस समय बिनाई का जिक्र आ गया है तो गाँवों में टोकरी, डलिया आदि बनाने का हाल भी बता देना चाहिये। ये डलवे, टोकरी झाऊ के पेड़ों से, सरकंडों तथा बाँस की तीलियों से बनाई जाती हैं। मजदूर के टोकरे, भूसा व उपली रखने के टोकरे झाऊ और सरकंडों से बनाए जाते हैं। पतले-पतले झाऊ के डंठल मिलो कर लचकदार बना लिए जाते हैं। इन्हीं से डलिया बनाते हैं। बाँस की टोकरी बनाने में पहले बाँस को चीर कर चौड़ी पतली-पतली खपाचें बना लेते हैं। पहले कुछ मोटी और चौड़ी खपाचियों को आड़ा समझ कर रख लेते हैं उसके बाद दूसरे डण्ठलों को चारों ओर घुमा कर उन्हें इस तरह कसते जाते हैं कि वे अलग अलग न हो सकें। सरकंडों से टोकरी तथा मोढ़े आदि बनाए जाते हैं।

गुड़ बनाना

गाँव में किसान गन्ने या ऊख से रस निकालते हैं। इस रस का गुड़

बनाया जाता है। गुड़ बनाने के लिये रस को बड़े बड़े कड़ाहों में उबालते हैं। हमारे यहाँ के किसान गुड़ बनाने में सफाई का ख्याल नहीं रखते। तिनके पत्तियाँ आदि सब रस के साथ गुड़ में रहने देते हैं। इसके अलावा जो रस के ऊपर का मैल होता है उसे भी ठीक से नहीं निकालते। मेरठ, बनारस और कानपुर का गुड़ खूब अच्छा और साफ समझा जाता है।

चर्खा कातना और कपड़ा बुनना

किसान परिवारों का एक दूसरा सहायक धंधा है सूत की कताई और कपड़े की बुनाई। महात्मा गाँधी का कहना है कि चर्खे से हम स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। इस काम में अब भी बीस लाख जुलाहों और सूत कातने वालों को काम मिलता है। सूत कातने का काम ऐसा है कि किसान को जब फुरसत हो तभी कर सकता है। एक चरखे में कोई ज्यादा पूँजी भी नहीं लगता। यदि चरखे पर सात आठ घंटे काम किया जाय तो कातने वाला अच्छी तरह ८ आने रोज कमा सकता है। सूत कातने से एक और फायदा यह है कि इसी सूत से किसान अपने घरवालों के पहनने के लिए कपड़े बुना सकता है। सचमुच सूत की कताई और कपड़े की बुनाई का काम ऐसा है कि दरिद्र किसानों की दरिद्रता बहुत हद तक कम हो सकती है। पुराने समय में तो ढाका की तरफ ऐसा पतला सूत काता जाता था कि उसके बिने हुए मलमल का थान एक छोटी डिबिया में आ जाते थे। कहते हैं कि जहाँगीर को किसी ने एक छोटी अँगूठी में नग की जगह थान रख कर भेंट किया था।

कुछ लोगों का कहना है कि हाथकर्घे पर कपड़ा बुनने का धंधा मिलों के मुकाबिले में नहीं ठहर सकता किन्तु उन्हें यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस गिरी हुई अवस्था में भी हाथकर्घे लगभग २५ लाख बुनकरों को काम देते हैं और देश में जितने कपड़े की खपत होती है उसका एक चौथाई कपड़ा हाथकर्घों पर तैयार होता है। फिर भी इस धंधे की दशा अच्छी नहीं है इसके मुख्य कारण यह हैं—१—जुलाहे निर्धन हैं। उनके पास पूँजी नहीं होती, उसे सूत इत्यादि उधार लेना पड़ता है और इस कारण वह महाजन के चंगल में फस जाता है। (२) उसके कर्घे तथा अन्य औज़ार

उनमें उन्नति होने की आवश्यकता है (३) जुलाहा अधिकतर पुरानी डिज़ाइनें ही तैयार करता है। नये डिज़ाइन जिनकी बाजार में माग है उसको सीखने की जरुरत है। (४) जुलाहे का अपने माल को बेचने को न तो कला ही आती है और न उसके पास विज्ञापन देने तथा कनवैसर इत्यादि रखने की सुविधायें ही हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सहकारी समितियों के द्वारा उसके तैयार माल को बिकवाने का प्रबंध किया जावे।

पशु-पालन

जैसा कि पिछले अध्याय में बताया गया था किसानों के लिए एक बड़े महत्त्व का उद्योग है पशु पालन। गाँव में बहुत से लोग गाय पालते और दूध भी बेचते हैं, लेकिन न तो वे रोज़गार के ढंग से जानवरों की सेवा करते हैं और न रोज़गार के ढंग से अपना माल ही बेच पाते हैं। इसीसे देखा जाता है कि किसानों को अक्सर गायों के पालन में कोई लाभ नहीं होता। कहने को हम लोग गाय को गो माता कहते हैं, लेकिन हमारे किसान न तो उसे अपनी माँ की तरह खाना देते हैं और न अच्छी जगह में उसे रखते ही हैं। इसके अलावा गाय-भैंसों की सफाई नहीं रक्खी जाती, फलस्वरूप ढोरों में अनेक रोग फैल जाते हैं और बहुतों की अकाल मौत हो जाती है। इन्हीं कारणों से ढोरों की नसलें कमजोर होती जा रही हैं। पहले तो किसान गाय खरीदने में गलती करते हैं। गाय दुधार होनी चाहिये। इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि गाय मोटी हो। गाय की खाल पतली तथा रोएँ नरम और चिकने होने चाहिए। थन सीधे हों, न बहुत छोटे हों न बहुत बड़े। काली, लाल और भूरे रंग की गायें अक्सर अच्छी होती हैं।*

दूध का काम

गाय पालने से बहुत फायदे होते हैं। गाय का बछड़ा बड़ा होकर खेत जोतने के काम आता है। गाय का गोबर, उपली, खाद और घर लीपने में काम आता है। गाय के दूध के बगैर तो हमारा काम नहीं चल सकता। कोई दूध पीता है। कोई उसका दही, मक्खन या मलाई-रबड़ी बनाकर खाता है। दूध का खोया बनाया जाता है। हम आगे किसी अध्याय में बतावेंगे

* देखिये अध्याय २० पशुपालन

कि दूध क्यों ताकतवर होता है। ताकतवर होने के कारण ही तो छोटे बच्चों को गाय का दूध पिलाया जाता है, लेकिन दूध से बीमारियाँ भी बहुत सी फैलती हैं। दूध की सफाई में जरा भी लापरवाही करने से वह खराब हो जाता है। जरा भी सफाई की कमी होने से बैक्टीरिया नाम का एक कीड़ा दूध में पैदा हो जाता है इससे दूध फौरन बीमारी का घर बन जाता है। हमारे ग्वाले दूध दुहने में बड़ी लापरवाही दिखाते हैं। न तो वे कभी थन को धोते हैं, न अपने हाथों को दुहाने के पहले साफ करते हैं और न साफ-सुथरे कपड़े ही पहनते हैं। इसके अलावा बछड़े के दूध पी चुकने के बाद भी थन का धोना आवश्यक है। दुहने वाले को न तो खाँसने छींकने की आदत होनी चाहिये और न कोई छूत का ही रोग हो। दुहने की जगह पर गर्द-गुबार न उड़ना चाहिये। दूध का बरतन साफ मजा हुआ होवे और जब दूध बनने के लिये ले जाया जावे तो बरतन को हमेशा साफ कर लेना चाहिए। यह तो दुहने व सम्बन्ध की बातें। अब दूध बेचने का तरीका सुनिए। हमारे देहातों माई अगर सेर भर दूध होता है तो पाव डेढ़ पाव पानी मिला देते हैं। यही नहीं विलायत के विद्वानों ने एक ऐसी मशीन निकाली है जिसमें डालकर घुमाने से कच्चे दूध में से मक्खन अलग निकल जाता है। बचे हुए दूध को मक्खनिया दूध कहते हैं। आजकल देहाती इस प्रकार पहले से ही मक्खन निकाल कर तब दूध को बेचने लाते हैं। ऐसा दूध किसी काम का नहीं होता। हमारे हलवाई इसी दूध का स्वाद कर बेचते हैं। इसी का दही जमाते हैं। चूंकि मक्खनिया दूध पतला और सार रहित सा मालूम पड़ता है इसलिए उसको गाढ़ा बनाने के लिए थोड़ा सा अरारोट या तीखुर डाल देते हैं। अरारोट पड़े दूध के दही के ऊपर मोटी मलाई जम जाती है। यह काम शहर में काफी किया जाता है, अगर हम चाहते हैं कि अधिक किसान दूध बेच कर कुछ पैसे कमा सकें तो उन्हें दूर स्थित शहरों और नगरों बिना बिगड़ा दूध ले जाने की सुविधा जरूरी है।

मक्खन और घी

दूध से मक्खन और घी भी बनाया जाता है। ऊपर हमने मक्खनि

दूध का हाल बताते समय कच्चे दूध से मक्खन निकालने की एक तरकीब बताई है। कच्चे दूध से मक्खन निकालने की जिस मशीन का जिक्र ऊपर आया है वह अभी हमारे गाँवों तक नहीं पहुँची है। शहर में ही उनका उपयोग किया जाता है। तुमने पिछली बार जो मक्खन मोल लिया होगा वह इसी तरह बनाया गया था। दूध को आग पर पका कर मथने से भी मक्खन निकल आता है, लेकिन शहर वाले पकाने के झगड़े में नहीं पड़ते। गाँवों में जो घी तैयार किया जाता है उसके लिए पहले दूध को उबालते अथवा पकाते हैं। पके हुए दूध में थोड़ा सा पहले का रक्खा हुआ दही डाल कर रख देने से सात आठ घंटे में दूध जम कर दही बन जाता है। इस दूध को मथानी से खूब मथते हैं। मथने से मक्खन ऊपर तैरने लगता है और निकाल लिया जाता है। मक्खन निकालने के बाद जो दूध सा पदार्थ बच रहता है उसे मट्ठा कहते हैं। मथ कर निकाले मक्खन को नैनू भी कहते हैं। नैनू कच्चे दूध से निकाले मक्खन से कहीं अधिक अच्छा और स्वादिष्ट होता है।

मक्खन को अच्छी तरह गरम करके घी बनाया जाता है। मक्खन में दूध का कुछ भाग बना रहता है। औटाने पर वह जल जाता है और घी तैयार हो जाता है। मक्खन एक दो दिन से अधिक नहीं ठहरता। दूध का भाग रहने से उसमें बदबू आने लगती है और वह ख़राब हो जाता है। इसलिए मक्खन ताज़ा खाया जाता है। घी बनाने म ख़राब होने वाला भाग पहले ही जल जाता है। इसलिए घी बहुत दिनों तक रहता है। घी और मक्खन दोनों शरीर को ताकत पहुँचाते हैं। लेकिन ये बहुत अधिक हजम नहीं किए जा सकते। मक्खन को लोग घी से अधिक लाभदायक मानते हैं। आजकल बेचने वाले घी में नारियल या दूसरी चीजों का तेल भी मिला देते हैं। इसके अलावा आजकल तरह तरह के बनावटी घी चल निकले हैं। जैसे घास का घी, कोकोजम इत्यादि। बहुत से लोग मक्खन को अच्छी तरह नहीं तपाते हैं बल्कि आधा पका आधा कच्चा ही बेचते हैं। इसलिए तुमने कभी किसी को घी के बारे में कहते सुना होगा कि घी में मट्ठा है। आजकल शहर में अच्छा घी मिलता ही नहीं। हाँ गाँवों में

अच्छा घी मिल जाता है। इसलिए आजकल घी मोल लेते समय उसे अच्छी तरह देख कर लेना चाहिए।

रस्सी बनाना

तुमने देखा होगा कि गाय दुहते समय ग्वाला अक्सर गाय के पिछले पैर बाँध देता है। पर किस चीज़ से पैर बांधे जाते हैं ? इसके अलावा कुयें से पानी किससे निकाला जाता है ? खेतों की सिंचाई के लिये जो मोट चलाई जाती है वह किससे खींचा जाता है ? इन तरह के सवालों के जवाब में तुम फौरन कह दोगे कि ये सब काम रस्से से होते हैं। किसी में रस्सी लगी होती है किसी में रस्सा। पतली डोर को रस्सी कहते हैं और मोटी को रस्सा। किसानों का तो बिना रस्सा रस्से के काम ही नहीं चल सकता। घर में, खेत में, गाड़ी की जाली बनाने में, बोझ बांधने में उसे रस्सी की ज़रूरत पड़ती है। क्या तुम बता सकते हो कि ये रस्सी-रस्से किसके बनते हैं और कैसे बनते हैं ? अच्छा सुनो, मूँज से, पाट से, नारियल के जटाओं से, सन के, सरपत से तथा और और चीज़ों से भी रस्से बनाए जाते हैं। मूँज की महीन बटी रस्सी को बाध कहते हैं और खटिया बुनने के काम में आता है। पाट और मूँज का रस्सी बनाने के पहले उसे पानी में भिगोते हैं। अच्छी तरह भीग जाने पर इन्हें खूब कूटते हैं। जब उनके डोरे डोरे अलग हो जाते हैं तब उनमें से चार-चार छः छः रेशे हाथों में लेकर ऐंठते और आपस में मिलाते चलते हैं। एक लम्बी रस्सी तैयार हो जाने पर उसे दोहरा तेहरा करके और मोटा व मज़बूत बना लेते हैं। सन की रस्सी बनाने के लिए पहले सन के पौधों को सड़ा कर सुखाया जाता है, तब सन अलग कर लेते हैं। और उसे बट कर रस्सी तैयार करते हैं। हमारे यहाँ के किसान सन को गदे पानी में सड़ाते हैं जिससे वह मैला हो जाता है। इसके अलावा हमारे यहाँ के सन में कूड़ा भी होता है। फिर वे थोड़ी सन के लच्छे बना डालते हैं जिससे रेशों के उलझ जाने पर उन्हें सुलझाने में बड़ी मेहनत पड़ती है। मूँज का रस्सी मज़बूत होती है और पानी पड़ने पर बिगड़ती नहीं। लेकिन सन को [illegible] में रहने

से ठीक नहीं रहती। नावों को बाँधने के लिए जो बड़े बड़े रस्से बनाए जाते हैं वे मूंज के ही होते हैं।

लकड़ी का काम

रस्सी के अलावा दूसरी चीज़ है जिसके बिना किसानों का काम नहीं चल सकता। गाँव में बढ़ई का होना जरूरी है। हल, जुआ, पालकी, खिड़की, दरवाजा व दई द्वारा ही तैयार होते हैं। डोबट, दाडाऊ और खुरपा, कुल्हाड़ी व बसूला के बैंट भी वही बनाता है। लकड़ी के जो कुछ भी काम बन सकते हैं वे बढ़ई की ही दस्तकारी के नमूने हैं। लेकिन बढ़ई एक ही दो चीजों के बनाने में अपना हुनर दिखाते हैं। जो सब बातों में अपनी टाँग अड़ाते वे किसी बात में निपुण नहीं हो पाते। गाँव के बढ़ई को हल तथा बैलगाड़ियाँ तो जरूर ही बनानी पड़ती। कोई बढ़ई हल बनाने में होशियार होता है, कोई गाड़ी बनाने में। इसके अलावा उत्तरी हिन्दोस्तान में लकड़ी पर चिताई का काम देखने में आता है। कारीगर लकड़ी पर ऐसे उम्दा उम्दा बेल-बूटे बनाते हैं तथा ऐसी नक्काशी करते हैं कि देखते ही बनता है। इसमें शीशम, शाल व आबनूस की लकड़ी अधिकतर काम में लाते हैं। नागपुर तथा अन्य जगहों में चिताई का काम बहुत अच्छा होता है। बनारस की तरफ लकड़ी के खिलौने बनाकर उस पर हल्के रंग से चित्रकारी की जाती है और फिर एक खास किस्म की वारनिश कर दी जाती है। ये खिलौने काफी अच्छे होते हैं।

लोहार का काम

बढ़ई के बाद गाँव के लोहार का नम्बर आता है। हल का फाल, कुल्हाड़ी का लोहा, खुरपा, बसूला आदि चीजों के बनाने के लिये प्रत्येक गाँव में एक लोहार का रहना जरूरी रहता है। लोहार लोहे को आग में तपाता है। फिर उसे लोहे के चौड़े ऊँचे टुकड़े पर जिसे घन कहते हैं हथौड़े से पीट कर जिस शक्ल का चाहता है बना लेता है। लेकिन अब तो लोहे के बड़े-बड़े कारखानों के खुल जाने से लोहार का बहुत काम घट गया है। तब भी लोहार देहात में अपना स्थान रखता है।

तेली का काम

लोहार की तरह ही तेली का काम है। गाँव में तेल जलाने के काम में आता है। तिल्ली का तेल जलाया भी जाता है और खाया भी। सरसों, अलसी, महुआ आदि और भी कितनी चीजों का तेल निकलता है। गाँव में एक तेली अवश्य होता है। तेल पेरना और बेचना ही उसका काम होता है। तिल्ली कोल्हू में पेरी जाती है। पत्थर का एक बड़ी सा ओखली जमीन में गड़ी होती है। ओखली के पास ही एक लकड़ी का खम्भा रहता है। उसमें लकड़ी का बना हुआ कोल्हू बाँध देते हैं जिसमें वह सधा रहे। ओखली में तिल्ली डालकर बैल को कोल्हू के साथ ओखली के चारों ओर घुमाते हैं। ऐसा करने से तिल्ली कोल्हू के नीचे पिसती है और उसमें से तेल निकलता है। पत्थर में छेद होता है। तेल उस छेद से जमीन में रक्खे हुये एक बरतन में गिरता जाता है। तेल निकल जाने पर तिल्ली की खली हो जाती है। खली जानवरों को खिलाई जाती है जिससे वे दूध अधिक दें। अब तो कहीं-कहीं आयल- एंजिन मशीनों द्वारा तेल निकाला जाता है। इसके चालू करने में खर्च तो ज्यादा जरूर होता है लेकिन देशी कोल्हू में जितना तेल दिन भर में निकलता है उतना तेल एंजिन के जरिये आधा घंटे में निकल आता है।

जूते बनाना

जिस तरह गाँव में जुलाहा, बढ़ई, लुहार आदि रहते हैं, वैसे ही चमार भी रहता है। अगर इनमें से कोई भी गाँव छोड़ दे तो सब लोगों को तकलीफ होगी। चमार हमारे लिए नये-नये जूते बनाता है और फटे पुराने जूतों की मरम्मत करता है। गाँव का चमार खेती भी करता है और खेती से फुरसत मिलने पर जूता बनाने का काम कर लेता है। यों तो गाँव का चमार घोड़ों पर की काठी और बैल हाँकने के लिये चमड़े के तस्में वगैरह भी बनाता है। शहरों में चमड़े के बक्स और मशक वगैरह बनाए जाते हैं। लेकिन गाँव का चमार अधिकतर जूते ही बनाता है। तुमने देहाती जूता तो देखा ही होगा। शहरों में अब पश्चिमी ढंग के फैशनदार जूतों के चलन जाने से
को कोई नहीं पूछता। लेकिन अंग्रेजों के आने के पहले सब कोई

पहनते थे। हमारा देहाती जूता बड़ा मजबूत तथा अच्छा होता है। इससे पहले ही पैर में सर्दी नहीं पहुँचती। फिर यह जल्दी पहना और उतारा जा सकता है। चमड़े को छूने से हाथ खराब हो जाते हैं और हाथों को धोना पड़ता है। ये विचार पहले थे और अब उठते जाते हैं, इसीलिए ये जूते ऐसे बनाए जाते हैं कि इन्हें पहनने और उतारने में हाथ न लगाना पड़े। जूता गाय, बैल आदि जानवरों की खाल का बनाया जाता है। जानवर के मर जाने पर चमार उसकी खाल को निकाल लाते हैं, खाल को पहले धूप में अच्छी तरह सुखाते हैं जिससे वह खूब कड़ी हो जाती है। इसके बाद खाल के रोएँ साफ कर दिए जाते हैं। फिर खाल को चमकाते हैं। जूता बनाते समय पैर का नाप लेकर चमार उसी तरह हमारे पैर का जूता तैयार कर देता है जिस तरह कि दर्जी नाप लेकर हमारा कोट या कमीज सी देता है। अब तो जूता बनाने के बड़े-बड़े कारखाने खुल गए हैं, जिनमें बड़े उम्दा उम्दा सस्ते जूते बनाए जाते हैं। भारतीय कारखानों में बने जूतों में कानपुर, आगरा या बाटा कम्पनी (कलकत्ता) के जूते मशहूर हैं। अब हम कुछ ऐसे उद्योग धन्धों का बयान करेंगे जो गाँवों में खोले जा सकते हैं।

फल,फूल और तरकारी पैदा करना

हमने पिछले अध्याय में फल, फूल और तरकारी भाजी के बाग लगाने के काम की चर्चा की थी। यदि किसान उपज की खेती के साथ एक छोटा सा बाग लगा ले तो उसे फल और तरकारी तो खाने को मिलेंगी ही, उन्हें बेच कर वे कुछ पैसे भी पा सकेंगे। फूलों से किसान का घर तो महक ही उठेगा उससे खुशबूदार अर्क, इत्र तथा गुलाब से गुलकन्द बनाया जा सकता है। कुछ फूल के पेड़ बंजर भूमि में भी फूल सकते हैं और तरकारी की वाटिका में किसान के घर का गन्दा पानी काम आ सकता है। परन्तु यदि वाटिका किसान के घर से मिली नहीं है तो गन्दे पानी को वाटिका तक ढोना पड़ेगा। फूलों से पूर्ण लाभ उठाने के लिए किसान को उचित शिक्षा, ट्रेनिंग तथा सहायता देने की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु किसान गाँव में फल व तरकारी किसके हाथ बेचेगा? अगर वह किसी शहर के पास है तब वह उसे शहर

बाकर अथवा शहर के विक्रेताओं के हाथ उन्हें बेच देगा। अगर ऐसा नहीं है तब बिना यातायात के प्रबन्ध के वह पैसे नहीं कमा सकता।

शहद का धन्धा

ऊपर फूलों का जिक्र आया था। फूलों के बीच अगर शहद की मक्खी पाल कर छत्ता लगवाया जाय तो शहद पैदा किया जा सकता है। लेकिन छत्ते के लिये फूल की वाटिका आवश्यक नहीं है। अब तो लकड़ी के ऐसे बक्स मिलते हैं कि उनमें शहद की मक्खियाँ पाल कर शहद निकालने के लिए न तो मक्खियों को उड़ाना पड़ता है और न छत्ते को तोड़ना। इस धन्धे में झंझट भी कम होता है, पूँजी भी कम लगती है और जगह भी कम मिलती है। शहद अति पौष्टिक भोजन भी है। परन्तु इस धन्धे की सफलता के लिए भी किसान को कुछ शिक्षा तथा बिक्री में सहायता आवश्यक है। दक्षिण भारत में डाक्टर स्पेंसर हैच तथा दूसरे ईसाई मजहब वालों की मेहनत के कारण गाँवों में इस धन्धे का काफी प्रचार हुआ है।

अन्य उद्योग-धन्धे

ऊपर बताए गए कुछ घरू उद्योग-धन्धों के अलावा अभी बहुत से और धंधे हैं। मध्यप्रान्त में वर्धा नगर में एक "अखिल भारत ग्राम उद्योग संघ" है। उसका उद्देश्य गाँवों की हालत सुधारना है। उसकी देखरेख में नीचे लिखे ग्राम उद्योग चल रहे हैं —

धान से चावल निकालना, आटा पीसना, गुड़ बनाना, तेल निकालना, शहद का मक्खियाँ पालना, मछली पालना, दूध का काम, कम्बल बनाना, रेशम का माल बनाना, सन का कताई और बुनाई, कागज बनाना, चटाई बनाना, कंघियाँ बनाना, पत्थर की कारीगरी, साबुन बनाना, चमड़ा तैयार करके उससे तरह-तरह की वस्तुएँ बनाना इत्यादि।

घरेलू उद्योग-धन्धे और सरकार

हमने इस अध्याय में कुछ खास उद्योग धन्धों के बारे में तो खुल कर बताया है और कुछ के बारे में संकेत में हाल कह दिया है। जिन धन्धों को अच्छी तरह बताया है उनका गाँव से अधिक सम्बन्ध है।

इसका यह मतलब नहीं है कि गाँव में गाँव से अधिक सम्बंध रखने वाले धंधों की ही उन्नति की जाय। अगर सरकार पहले से योजना बना कर गाँवों में कृषि के साथ उद्योग धंधों का व्यवस्था और उन्नति करे तो घरेलू उद्योग धंधों द्वारा साबुन, कागज, कंघी, बटन, सुरक्षित छिले फल, हाथ के बिने कपड़े आदि अनेकों पदार्थ तैयार किये जा सकते हैं। वह गाँवों के लिए उपयुक्त धंधे चुन सकती है। उनको चालू करने की व्यवस्था कर सकती है। किसानों को उनमें शामिल होने के लिए प्रोत्साहन, शिक्षा, और आर्थिक सहायता दे सकती है। धंधों के लिए यातायात के साधनों की उन्नति कर सकती है और माल की बिक्री सुगम कर सकती है। अगर गाँवों में बिजली भी पहुँच जाय तो कार्य क्षमता और कार्य क्षेत्र अधिक बढ़ जाय। सरकार ही यह कार्य सम्पन्न कर सकती है। प्रान्तीय तथा दिल्ली की केंद्रीय सरकार ऐसी कोशिश कर रही है।

अस्तु, हम खेती और घरेलू उद्योग धन्धों के बारे में काफी जान गए, इनके जरिए बहुत सी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं। अब प्रश्न उठता है कि जो वस्तुएँ उत्पन्न की गई हैं उनका काम में किस प्रकार लिया जाय। अर्थात् वस्तुओं का किस तरह से उपभोग किया जाय। उपभोग के सम्बन्ध की सारी बातों पर हम अब अर्थशास्त्र के उपभोग विभाग के अन्दर विचार करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—अपने गाँव के किसी किसान से पूछकर लिखिये की प्रति मास उसे खेती संबंधी कौन कौन से काम करने पड़ते हैं। किन महीनों में उसे सबसे अधिक काम रहता है और किन महीनों में उसे सबसे कम?

२—आपके गाँव के किसान साधारणतः वर्ष भर में कितने महीने बेकार रहते हैं? इस बेकारी के समय में आप उनको कौन सा काम करने की सलाह देंगे?

३—आपके गाँव में आजकल प्रति मास कितना सूत काता जाता है? यदि गाँव के सब बेकार स्त्री पुरुष प्रति दिन चार घंटा सूत कातने लगें तो एक मास में कितना सूत तैयार हो सकता है?

४—आप के गांव में या आसपास के गाँवों में जुलाहों की क्या संख्या है। ये जुलाहे हाथ के कते सूत का कहाँ तक उपयोग करते हैं।

५—जुलाहों की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिये और उनकी दशा सुधारने के उपाय बतलाइये।

६—आर्थिक दृष्टि से खद्दर प्रचार की आवश्यकता समझाइये।

७—अपने गाँव के कुम्हार की आर्थिक दशा का वर्णन कीजिये वह अपनी आमदनी किस प्रकार बढ़ा सकता है?

८—युक्तप्रांत में पीतल के बरतन किन स्थानों में अच्छे और सस्ते मिलते हैं। मुरादाबाद किस प्रकार के बरतनों के लिये प्रसिद्ध है और उस उद्योग का वर्तमान दशा कैसी है?

९—आप के जिले में गुड़ किस प्रकार बनाया जाता है। इस प्रांत में गुड़ कहाँ अच्छा और सस्ता बनता है?

१०—शहर में दूध का क्या भाव है। गावों में दूध किस दर पर मिलता है। दोनों दरों में अंतर के क्या कारण हैं?

११—शुद्ध दूध की पहिचान लिखिये। शहर में शुद्ध दूध सस्ते भाव देने के लिए योजना तैयार कीजिये।

१२—घी में कौन सी वस्तुएं प्राय मिलाई जाती हैं? शुद्ध घी की क्या पहिचान है?

१३—आपके गांव में चमारों की क्या दशा है। उनकी दशा किस प्रकार सुधारी जा सकती है?

१४—अपने गाव के मुख्य घरेलू धंधों का वर्णन कीजिए। उनमें कौन-कौन सी बुराइयाँ हैं? उन्हें आप कैसे दूर करिएगा?

१५—यदि आपको १००) दे दिया जाय तो आप उससे अपने गावों के घरेलू उद्योग धंधों को सुधारने के लिए किस प्रकार खर्च करेंगे।

१६—सरकार योजना बना कर किस प्रकार घरेलू उद्योग-धंधों की उन्नति कर सकती है। उदाहरण देकर समझाइये।

हो पर मेरे लिए नहीं। हाँ कुछ देर के बाद वह मेरे लिए भी ज़रूरी बन सकती है। मान लो, मैं खा चुका हूँ और तुमने अभी खाना नहीं खाया है इसलिए तुमको अभी खाना खाने के लिए भोजन चाहिये। कुछ घण्टों के बाद जब मुझे फिर से भूख लगेगी तब मुझे भी भोजन की जरूरत पड़ेगी।

किसी आवश्यकता की तृप्ति के लिए एक से अधिक साधन होते हैं। अगर आप को धूम्रपान की इच्छा है तो आप तम्बाकू, सिगरेट, सिगार और बीड़ी इनमें से कोई भी चीज पी सकते हैं। इसी से ये चीजें एक दूसरे की जगह लेने की कोशिश करती हैं। अकाल के दिनों में गरीब लोग गेहूँ की रोटी के बदले चना, ज्वार, बाजरा इत्यादि की रोटी खाते हैं। इसी तरह आजकल किसी वस्तु को एक जगह से दूसरी जगह भेजने के लिए रेलगाड़ी और मोटर लारियों में लाग डाँट चल रही है।

जब हम किसी आवश्यकता को कभी कभी पूरी करते हैं तो वह आवश्यकता हमारे लिए अनिवार्य बनने की कोशिश करती है। जैसे कोई मनुष्य किसी के कहने से कभी शराब पी ले तो फिर बाद को उसको शराब पीने का चसका लग जाता है और वह पूरा पियक्कड़ बन जाता है। उसकी शराब पीने की आदत ऐसी जबरदस्त हो जाती है कि वह आसानी से उस आदत को नहीं छोड़ सकता, इसी प्रकार और आवश्यकताओं की भी आदत पड़ जाती है।

आवश्यकता के भेद (Kinds of Wants)

यह तो हम जान गये कि आवश्यकता किसे कहते हैं और उसके लक्षण क्या हैं, अब यह जानना जरूरी है कि आवश्यकताएँ कितने प्रकार की होती हैं। यों तो हम आवश्यकता के लक्षणों के मुताबिक कह सकते हैं कि कुछ जरूरतों को शीघ्र पूरा करना पड़ता है, किसी को देर में। जैसे पहनने के लिए कपड़ा चाहे न मिले लेकिन भूख लगने पर खाना अवश्य मिलना चाहिए। कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं कि उसको पूरा करने के लिए बहुत से साधन होते हैं जैसे धूम्रपान के लिए हम बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, या सिगार पी सकते हैं। इसी प्रकार नशा करने के लिए हम भंग, अफीम, ताड़ी,

शराब वगैरह पी सकते हैं। ठीक, लेकिन इस तरह के तो शायद सैकड़ों विभाग बनाए जायें तब भी काम न चलेगा। सब से अच्छा तरीक़ा यह है जिसमें आवश्यकताओं को तीन हिस्से में बाँटते हैं। पहले तो वे आवश्यकताएँ आती है जिनको हम आवश्यक (Necessaries) समझते हैं। अथा अपाहिज कैसा ही मनुष्य क्यों न हो, वह अपने शरीर को नाश होने से बचाने की हमेशा कोशिश करता है, पेट भरने के लिए सब को भोजन और पीने को पानी चाहिए। पहनने के लिए कपड़े की आवश्यकता पड़ती है। यहाँ पर एक बात नोट करने लायक है। राम साधारण भोजन करता है, फटा पुराना कपड़ा पहनता है और टूटी-फूटी झोपड़ी में रहता है। इसके विपरीत श्याम अच्छा अनाज, दूध, फल इत्यादि खाता है। वह साफ-सुथरे कपड़े पहनता है और हवादार मकान में रहता है। एक तरह से राम और श्याम दोनों ही जीवन रक्षा के लिए जरूरी वस्तुओं का उपभोग करते हैं, परन्तु कुछ वर्षों में राम कमजोर और रोगी बन जायगा और श्याम मजबूत व ताजा। कहने का मतलब यह कि आवश्यक वस्तुओं में से कुछ तो केवल मनुष्य को जिंदा बनाए रखना है और कुछ आदमी की जीवन-रक्षा के अलावा तन्दुरुस्ती भी प्रदान करती हैं। जीवन रक्षा (Necessaries for existence) के लिए आवश्यक वस्तुओं के अन्तर्गत उन चीजों को भी शुमार किया जाता है जो मनुष्य की आदत के कारण जरूरी पड़ जाती हैं। उदाहरण के लिए किसान तम्बाकू पीते हैं। परन्तु क्या जीवन निर्वाह के लिए जरूरी है? क्या इसके बिना किसान जिन्दा नहीं रह सकते हैं? उत्तर है रह सकते हैं। परन्तु शुरू से ही तम्बाकू पीते पीते उनकी आदत ऐसी हो गई है कि अब वे बिना तम्बाकू पिए कुछ काम ही नहीं कर सकते। अतएव कुछ वस्तुओं की आवश्यकता तो आदमी को जिन्दा रखने के लिए पड़ता है, कुछ मनुष्य को स्वस्थ और निपुण बनाए रखती है और कुछ हमारी आदतों के कारण अनिवार्य बन गई है। इस प्रकार आवश्यक वस्तुओं के तीन भेद हुए— जीवन रक्षक, निपुणतादायक और कृत्रिम आवश्यक (Conventional necessaries) दूसरे हिस्से में वे आवश्यकताएँ रखी जिनकी मनुष्य को आराम करने के लिए जरूरत

की वस्तुओं (Comfrts) से शरीर को सुख मिलता है और काम करने की ताक़त भी बढ़ती है। लेकिन इन पर जितना खर्च किया जाता है उस हिसाब से कार्य कुशलता नहीं बढ़ती। जैसे किसी ग़रीब आदमी के लिए धोती, कुर्ता और चप्पल उसकी कार्य-कुशलता बढ़ाते हैं लेकिन अगर वह बढ़िया महीन धोती, रेशमी कमीज व कपड़े का उम्दा जूता पहने तो ये वस्तुयें उसके लिए आराम की वस्तुएं कही जावेंगी। इसी तरह से ग़रीब किसान के लिए साइकिल, घड़ी, पक्का मकान, इत्यादि भी आराम की सामग्री में शामिल किए जा सकते हैं।

अन्त में उन आवश्यकताओं का बारी आती है जिनको पूरा करने के लिए मनुष्य विलासिता की वस्तुओं(Luxuries) का उपभोग करता है। इस बार तो इन चीज़ों पर जो रक़म खर्च की जाती है उससे बहुत कम कार्य कुशलता मिलती है। कभी कभी तो इन वस्तुओं के उपभोग से कार्य-कुशलता बढ़ने की जगह घटने लगती है। उदाहरण स्वरूप खूब बढ़िया आलीशान मकान, बहुत कीमती भड़कीली पोशाक व विलायती ह्विस्की और अंगूरी शराब इत्यादि गिनाई जा सकती हैं। विलासिता की वस्तुओं के सेवन करने से आदमी को आलस घेर लेता है और काम करने को जी नहीं चाहता। शराब इत्यादि के सेवन से तो आदमी बिलकुल कमज़ोर नाकाम और रोगी बन जाता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि आवश्यकताओं के ये भेद एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। दर असल इनका भेद आदमी की परिस्थिति के अनुसार समझा जाता है। मनुष्यों की प्रकृति, आदत, फैशन आदि पर आवश्यकताओं के भेद में फर्क पड़ जाता है। एक डाक्टर के लिए मोटरकार आवश्यक मालूम पड़ती है क्योंकि उसकी सहायता से वह कम समय में बहुत से मरीजों को देख सकता है, लेकिन कालेज के प्रोफेसर के लिए मोटरकार आराम या विलासिता की ही वस्तु समझी जावेगी। अमीर आदमी के लिए महल, बिजली के लैम्प इत्यादि आराम की वस्तुएँ हों, लेकिन एक ग़रीब किसान के लिए ये वस्तुएँ एकदम विलासिता की वस्तुएं समझी जावेंगी।

आवश्यकता की पूर्ति (Satisfaction of want)

अब प्रश्न उठता है कि आवश्यकता पूरी किस प्रकार की जाती है। यह तो सबको मालूम है कि हर आदमी पहले अपने खाने-पीने की वस्तुएं खरीदता है। अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार भी यही नतीजा निकलता है कि मनुष्य अधिकतर जीवन-रक्षक वस्तुओं का उपभोग करें और आराम व विलासिता की चीजों का उपभोग करने में रुपया-पैसा की फिजूल खर्ची न करे। परन्तु इस बात पर हम बाद में ख्याल करेंगे। यहाँ पर पहले यह जानना आवश्यक है कि बहुत सी आवश्यकताओं को तो आदमी सीधे सीधे पूरा कर लेता है। मान लिया आपको पानी पीना है। आप नदी या तालाब पर जाकर पानी पी लेते हैं। अगर आपको जाड़े के दिन में नहाने के लिए गरम पानी करना है तो आप बटलोई में पानी भर कर आग पर चढ़ा देते हैं, अब कोई आवश्यकता सीधे-सीधे पूरी की जाती है तो किसी वस्तु का उपभोग सीधे सीधे किया जाता है। जैसे यहाँ पर बटलोई से काम लिया गया था। परन्तु अधिकतर आवश्यकता पूर्ति के लिए पहले रुपए-पैसे कमाए जाते हैं और तब उन रुपयों से आवश्यक वस्तु मोल ली जाती है। बढ़ई हल, कुर्सी, मेज आदि चीजें बनाकर बेचता है, लोहार फाल, खुर्पा, फावड़ा वगैरह लोहे के सामान बनाता है। इन वस्तुओं को बेचने से जो पैसे बढ़ई या लोहार को मिलते हैं उनसे वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जरूरी वस्तुएं खरीदते हैं। कहने का मतलब यह है कि आवश्यकताओं के पूरा करने के प्रश्न की जगह हमें यह सोचना चाहिए कि कोई मनुष्य अपनी आमदनी से रुपए पैसों को किस प्रकार खर्च करता है तथा खर्च करने का कौन सा तरीका सबसे उत्तम होगा।

आय-व्यय (Income and Expenditure)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जीवन-रक्षक पदार्थ तो सब लोगों को सेवन करना चाहिए। इन पर किया गया खर्च हमेशा
है। आराम की वस्तुओं पर किया गया खर्च

कार्य-कुशलता बढ़ती है। लेकिन ऐसी आराम और विलासिता की वस्तुओं पर तथा मादक वस्तुओं पर किया गया खर्च अक्सर फिजूलखर्ची म समझा जाता है। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि आमतौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि कौन सी वस्तु जीवन-रक्षक है, कौन सी आराम की और कौन सी चीज़ विलासिता की है। क्योंकि मनुष्य की प्रकृति, आदत, फैशन व समय के मुताबिक एक वस्तु आवश्यक भी हो सकती है और आराम व विलासिता की सामग्री भी बन सकती है। तब भी अगर कोई किसान एक घड़ी खरीदे तो उसका यह खर्च फिजूलखर्ची में गिना जायगा। लेकिन यदि एक विद्यार्थी घड़ी खरीदता है तो शायद उसकी खरीद न्यायपूर्ण मानी जा सकती है। हमारा गरीब भोला किसान अगर अपने और अपने बच्चों को भूखा रख कर या कर्ज लेकर घड़ी खरीदता है तो वह जरूर विलासिता की चीज खरीदता है। क्योंकि उसी रुपये से वह ऐसी वस्तुएँ मोल ले सकता था जिससे उसे अधिक उपयोगिता प्राप्त होती। मान लीजिए वह घड़ी की जगह खाने के लिए चना और जवा खरीदता तो इससे वह अपना व अपने बच्चों का पेट भर सकता था। पेट भरे रहने पर वह मेहनत करके कुछ कमा सकता था। लेकिन अगर कोई अमीर मनुष्य ऐसा करे तो वह फिजूल खर्ची नहीं कहलाएगी। क्योंकि उसके पास इतना रुपया रहता है कि वह अपनी ज़रूरी आवश्यकताओं को अच्छी तरह पूरी कर सकता है।

कहा जाता है कि जीवन रक्षा सभ्य वा आवश्यकताएं जितनी गिनाई हैं और यदि उन्हीं को पूरा करने पर अधिक जोर डाला जायगा तो मनुष्य को अधिक उद्योग नहीं करना पड़ेगा। और मनुष्य जाति असभ्य बन जायगी। अधिक सभ्य बनने के लिए यह आवश्यक है कि हम नई नई चीजों का आविष्कार करें और नई नई वस्तुएँ बनावें, जैसे रेडियो, टेलीफोन, हवाई जहाज। यह मानी हुई बात है कि ये सब विलासिता की चीजें हैं। अतएव हमको विलासिता की वस्तुओं का उपभोग करना चाहिए। लेकिन हमारे गरीब भारत के लिए यह बात कहाँ तक ठीक है? हमारे किसानों की क्या हालत है? क्या उन्हें *जीवन-रक्षक पदार्थ* ही प्राप्त हैं? अंदाज लगाया गया है कि जेल के अन्दर कैदियों को जो भोजन मिलता है वह भी बाहर के अधिकांश मनुष्यों

को नसीब नहीं होता। ऐसी हालत में विलासिता की वस्तुओं पर किया गया खर्च बिलकुल फिजूल है।

इसके अलावा हम बता चुके हैं कि हमारे मजदूर और छोटे शिल्पकार अपनी आमदनी का अधिकांश भाग तम्बाकू, शराब, अफीम इत्यादि मादक वस्तुओं के सेवन में उड़ा देते हैं। ऐसी हालत में हमारे बच्चों को कहाँ से भी दूध मिल सकता है जिससे वे भविष्य में तन्दुरुस्त और कार्य कुशल बनें। तो फिर धन को किस प्रकार से खर्च करना चाहिए? उत्तर है इस तरह से जिससे न केवल हमको अधिक से अधिक सुख मिले बल्कि जिससे देश में रहने वाले ज्यादा से ज्यादा जनसमूह को जीवन-रक्षक वस्तुएँ मिलें। जब तक यह हालत न हो जाय तब तक आराम व विलासिता की वस्तुओं को खरीदना फिजूलखर्ची में गिना जाना चाहिए। इसके बाद जब इन चीज़ों की भी बारी आवे तब ऐसी वस्तुओं का उपभोग न करना चाहिये जिनसे थोड़ी देर के आनन्द के सिवा और कुछ न मिले, जैसे नाच, खेल-तमाशा, आतिशबाजी। इनमें तो जो सामग्री उसके बनाने में लगाई जाती है वह मिनटों में जल कर खाक हो जाती है अर्थात् देश का उतना धन नष्ट हो जाता है।

बचत (Saving)

एक बात और। क्या मनुष्य को अपनी आमदनी का एक भाग भविष्य के लिए निकाल कर अलग नहीं रख देना चाहिए? कौन जानता है कि जो मनुष्य आज सम्पत्तिशाली है वह भविष्य में भी वैसा ही बना रहेगा? कितनी बार अचानक ऐसे कारण आकर उपस्थित हो जाते हैं कि सम्पत्ती मनुष्य भी रोटियों का मोहताज हो जाते हैं। इसके अलावा जब आदमी बुड्ढा हो जाता है या चारपाई पकड़ लेता है तब अपनी जिन्दगी को सुख से तरीके से बिताने के लिए उससे पहले से रुपए बचाने पड़ते हैं। इसके अलावा बहुत से सज्जन अपने पुत्रों को पढ़ा कर कमाने योग्य बनाना चाहते हैं और पढ़ाई के लिए उन्हें पैसा संचय करना पड़ता है। बहुत से मनुष्य अपनी मृत्यु के बाद लड़कों को कुछ धन-दौलत छोड़ जाना चाहते हैं। कुछ आदमी बाद में तीर्थ-यात्रा करना चाहते हैं। कितने तो दान-पुण्य के लिए

धन इकट्ठा करना चाहते हैं। इन सब बातों के लिए धन इकट्ठा करना अर्थात् बचाना पड़ता है। बचाई हुई रक़म बचत कहलाती है।

बचत कितनी करनी चाहिए और कैसे? इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य यह बात है कि भविष्य के महत्व के बारे में आदमी आदमी की राय में फ़र्क रहता है। कोई भविष्य को मानते ही नहीं। उनका उद्देश्य खा चाट सब बराबर कर देना रहता है क्योंकि कौन जानता है कि कब यमदेव का बुलावा आ पहुँचे। परन्तु ऐसे लोग अपनी आय का अधिकांश भाग थोड़ी देर तक मज़ा देने वाली चीज़ों पर खर्च करते हैं। लेकिन जो दूरदेश होते हैं वे ऐसे खर्च को ताक पर रख कर रुपये को भविष्य के लिए बचा लेते हैं।

परन्तु बचाना कैसे चाहिये? क्या यह सब से अच्छा होगा कि रुपए को या उन रुपयों से सोना चाँदी मोल लेकर उनको धरती में गाड़ देवें? हमारे भारत में गहनों के रूप में बहुत सा धन बेकार पड़ा हुआ है। और चूँकि यहाँ पर हर एक आदमी की इतनी भी आमदनी नहीं है कि वह जीवन रक्षक पदार्थ भी प्राप्त कर सकें, इस बात की बड़ी ज़रूरत है कि बचत की रक़म ऐसे काम में लगाई जाय जिससे देश की पूँजी बढ़े। लेकिन यह तो बहुत दूर की बात है। आप यों ही देखिए। बचत के रुपयों को गहने के रूप में रखने से आपको उस रक़म पर कोई सूद तक नहीं मिलता। इस तरह से रक़म रखने और गाड़ कर रुपया पैसा रखने में कोई अधिक फ़र्क नहीं मालूम पड़ता और यह साफ़ है कि यह तरीका ठीक नहीं। अस्तु सब से अच्छा तरीका तो यह होगा कि जैसे जैसे बचत होती जाय वह डाकघर या किसी अच्छे बैंक के सेविंग बैंक के हिसाब में जमा कर दी जाय। इससे कुछ सूद मिलने के अलावा रुपया सुरक्षित रहता है। दूसरा तरीका, ज़मीन खरीदना या मकान बनवाना है। इससे भी रक़म सुरक्षित रहती है और आमदनी अच्छी होती है। कुछ मनुष्य अपने बुढ़ापे के लिए अथवा अपने सहारे रहने वाले आदमियों की मदद करने के लिए जीवन बीमा करवा लेते हैं। इसके लिए कुछ साल तक हर-साल एक निश्चित रक़म बीमा कम्पनी को देनी पड़ती है।

अवधि खतम हो जाने पर बीमा का रकम बीमा करने वाले बुड्ढे को या उसकी मृत्यु पर उसके आश्रितों को मिल जाती है।

कहा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति को निज अन्न और कपड़े नत्ते का दुःख नहीं है अपना आय में से कम से कम दसवाँ हिस्सा हर साल बचाने का दृढ़ प्रयत्न करना चाहिए। यदि वह ऐसा करने में सफल होगा तो इस बचत की वजह से मुसीबत के बुरे दिनों में कर्जदार होने से बच जायगा और हमेशा सुखी बना रहेगा।

अभ्यास के प्रश्न

१—उपभोग की परिभाषा लिखिए और उसका महत्त्व समझाइये।

२—आवश्यकताओं का विश्लेषण लिखिये और उन पर नियन्त्रण की जरूरत समझाइये।

३—आवश्यक वस्तुओं के भेद उदाहरणों सहित समझाइये। अपने निपुणतादायक आवश्यक पदार्थ और कृत्रिम आवश्यक पदार्थों की सूची दीजिए।

४—आराम की वस्तुएँ और विलासिता कि वस्तुओं के भेद बतलाइये। किसी किसान की विलासिता की वस्तुओं की सूची तैयार कीजिये।

५—मादक वस्तुओं के उपभोग से क्या हानियाँ होती हैं?

६—गाँवों में तम्बाकू का उपयोग बहुत होता है। क्या आप इसे अच्छा समझते हैं?

७—कुछ स्थानों में चाय का उपभोग बढ़ रहा है। क्या इसका प्रचार करना आवश्यक है?

८—सिद्ध कीजिये कि सादा जीवन और उच्च विचार ही आर्थिक दृष्टि से भी सर्वोत्तम ध्येय है।

९—बिना आमदनी के बढ़ाए सन्तोष की मात्रा कैसे बढ़ाई जा सकती है?

१०—खर्च में बचत की आवश्यकता समझाइये। साधारण परिस्थिति के व्यक्तियों को कम से कम प्रतिमास कितनी बचत करनी चाहिए?

११—आर्थिक दृष्टि से दानधर्म का सर्वोत्तम प्रणाली कौन सी है? भारत में इस प्रणाली के अनुसार दान कहाँ तक होता है?

१२—अपनी बचत के धन से सोने-चांदी के गहना बनवा लेना कहाँ तक उचित है ?

सातवाँ अध्याय

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

रहन-सहन का दर्जा (Standard of Living)

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि मनुष्य की आवश्यकताएँ अपरिमित होती हैं। फिर भी आदमी अपनी आमदनी अपनी दशा और परिस्थिति के अनुसार कुछ वस्तुओं का उपभोग करने लगता है। इन चीजों के उपभोग का जो ढंग पड़ जाता है वह बहुत कम बदलता है और यदि बदलता है तो बहुत धीरे धीरे। जितनी आमदनी होगी उतना ही ख़र्च भी किया जा सकेगा। आमतौर पर एक ही आमदनी वाले मनुष्य या परिवार करीब करीब एक ही समान रहते हैं। अर्थात् उनका रहन सहन का दर्जा एक सा ही होता है। और जैसे जैसे आमदनी में कमी बेशी होगी वैसे ही वैसे रहन सहन के दर्जे में भिन्नता पाई जाती है। यों तो एक तरह से प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक परिवार एक दूसरे से सभी बातों में कभी भी मिलता जुलता नहीं है, इसलिए जितने परिवार हैं उतने रहन सहन के दर्जे हो सकते हैं। लेकिन साधारणतः रहन सहन के दर्जे चार भागों में बाटे जाते हैं। पहले दर्जे में वे लोग शामिल रहते हैं जिन्हें जीवन-रक्षक पदार्थ भी प्राप्त नहीं होते तथा जिन्हें कई कई दिन तक उपवास करना पड़ता है। इस दर्जे के मनुष्य भीख माँगते हैं और कर्ज भी लेते हैं। इन्हें दरिद्र कहा जाय तो गलत न होगा। हमारे ग़रीब मजदूर व किसान इसी दर्जे में रक्खे जा सकते हैं। दूसरा दर्जा उन लोगों का है जिन्हें जीवन रक्षा सम्बन्धी साधारण पदार्थ ही प्राप्त हो सकते हैं। दोनों वक्त रूखा-सूखा भोजन खाना, फटा पुराना कपड़ा पहनना व टूटे-फूटे मकान में रहना ही इन लोगों का काम रहता है। तीसरे दर्जे वाले मनुष्यों को जीवन-रक्षक वस्तुओं के अलावा

आराम की भी वस्तुएँ मिल जाती हैं। दफ्तरों में काम करने वाले हमारे हेडक्लर्क साहब खूब अच्छा खाना खाते हैं, साफ सुथरा कपड़ा पहनते हैं तथा खुले हुए हवादार मकान में रहते हैं। ये आराम की वस्तुओं का भी सेवन करते हैं। चौथे दर्जे में रईस और अमीर, आदमी आते हैं जिनके पास धन की कमी नहीं रहती। वे जो चाहें खरीद सकते हैं। उनका जीवन पूरी तरह से विलासिता पूर्ण होता है। परन्तु यह कोई जरूरी नहीं कि जो लखपती है उसके रहन-सहन का दर्जा सब से ऊँचा हो। अगर रईस मनुष्य का स्वास्थ्य खराब रहता है और उसे कोई चीज़ नहीं पचती, तो उसका रहन-सहन सुख देने लायक नहीं होगा। इसी तरह से आदमियों का ऐसा रोग पकड़ लेता है कि उसका असर उनके रहन सहन पर बहुत पड़ता है। मेवालाल की आँखें खराब हों, हीरा बहरा हो, प्रेम की आँतों में कीड़े पड़ गये हों तो ये लोग उपभोग की चीजों से पूरापूरा सतोष और आनन्द नहीं उठा सकते। इसी तरह बहुत से तन्दुरुस्त और तगड़े आदमी शराब, ताड़ी वगैरह पीकर या अनाप शनाप खा कर या बुरी सोहबत में पड़ जाने के कारण अपने को बरबाद कर देते हैं। फलस्वरूप उनका रहन सहन का दर्जा गिर जाता है।

भारतीय रहन-सहन का दर्जा

ऊपर बताई बातें हमारे भारत पर कुछ लागू होती हैं। यहाँ पर पहले तो आमदनी की कमी है, अंदाजा लगाया गया है कि हिन्दुस्तान के राजा महाराजा, सेठ साहूकार, रईस वगैरह को मिलाकर भी हर एक भारतीय की दैनिक आमदनी का औसत छै आने पैसे पड़ता है। इसके अलावा उपभोग की भी कमी मालूम पड़ती है। सरकार की ओर से यह कहा जाता है कि हिन्दुस्तानियों का रहन-सहन का दर्जा बढ़ता जा रहा है, क्योंकि पहले यहाँ आराम की जितनी सामग्री आती थी उनसे कहीं अधिक वस्तुएँ आजकल आती हैं। देहातों में पक्के मकान बनने जाते हैं। साइकिल का प्रचार बहुत अधिक हो गया है। चाय और सिगरेट की खपत अधिक हो गई है, इत्यादि। परन्तु इस तरह कहने वाले एक बात भूल जाते हैं कि यह मनुष्य की स्वाभाविक आदत है कि वह भोगविलास के पदार्थों का सेवन चाहता

किस प्रकार खर्च करता है। रहन-सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए मनुष्यों के आय-व्यय का अध्ययन करना अनिवार्य है। अंग्रेजी में आय व्यय सम्बन्धी लेखे को बजट कहते हैं। इस शब्द का अब हिन्दी में भी प्रयोग होने लग गया है। किसी मनुष्य या परिवार के बजट के अन्दर यह देखा जाता है कि उस परिवार में कितने मनुष्य हैं, कितने कमाई करते हैं, वे कैसे मकान में रहते हैं, उनकी उम्र, योग्य, शिक्षा आदि क्या है? परिवार की होने वाली आय क्या है, वह किस प्रकार खर्च की जाती है? अन्त में कुछ बचत भी होती है अथवा परिवार वालों को कर्ज लेना पड़ता है? रहन सहन का दर्जा निश्चय करने के लिए व्यय सम्बन्धी अङ्कों से बड़ी सहायता मिलती है।

पारिवारिक बजट से केवल रहन सहन का दर्जा ही नहीं निश्चित होता। इसका अन्य महत्व भी है। उनमें से दो का उल्लेख किया जाता है। प्रथम, पारिवारिक बजट को ठीक से इकट्ठा करने पर यह मालूम किया जा सकता है कि परिवार का व्यय अनावश्यक कामों में व्यय तो नहीं हो रहा है। उदाहरणार्थ आजकल के जमाने में यह सम्भव है कि किसी परिवार में अच्छा भोजन न किया जाता हो और बीमारी पर अधिक खर्च होता हो। इन बातों का पता लग जाने से सरकार शिक्षा द्वारा जनता की आदत सुधारने का प्रयत्न कर सकती है। द्वितीय, यदि पारिवारिक बजट ऐसा हो कि उससे मालूम पड़ जाय कि पारिवारिक आय किन किन वस्तुओं की खरीद में खर्च की गई तो सरकार तथा उत्पादक उन वस्तुओं की उत्पत्ति करने का प्रयत्न करेंगे। भारत की आर्थिक उन्नति हो रही है। भाँति भाँति के उद्योग धंधे खोले जा रहे हैं। कृषि पदार्थों की उत्पत्ति बढ़ाई बढ़ाई जा रही है। यह प्रश्न उठता है कि कौन से उद्योग पहले खोले जायें? किस वस्तु की उत्पत्ति कहाँ तक बढ़ाई जाय? यदि पारिवारिक बजट का उपयुक्त आँकड़े प्राप्त हों तो इन प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकता है।

विविध व्यय सम्बन्धी अङ्कों के अध्ययन करने से यह निश्चय हुआ है कि जिस दर से एक कुटुम्ब की आमदनी बढ़ती है, भोजन का व्यय उसी दर से नहीं बढ़ता। लेकिन वस्त्र मकान भाड़े का खर्च उसी दर से

बढ़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य और मनोरञ्जन की सामग्री के व्यय की वृद्धि का दर आमदनी की वृद्धि की दर से अधिक बढ जाता है। जर्मन निवासी डाक्टर ए. जिल हजारों परिवार के बजट को देख कर हम नतीजे पर पहुँचे हैं कि कम आमदनी वाले परिवार का अधिकांश भाग भोजन निर्वाह में खर्च हो जाता है। लेकिन वस्त्र पर प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च लगभग बराबर होता है अर्थात् यदि पचास रुपये आमदनी वाले का वस्त्र में करीब आठ रुपये खर्च होते हैं तो सौ रुपए आमदनी वाले का सोलह और हज़ार रुपया आमदनी वाले का करीब एक सौ आठ रुपया खर्च होता है। इसी तरह किराये में, रोशनी और ईंधन में भी प्रत्येक परिवार में प्रतिशत खर्च बराबर होता है। लेकिन यह बात जरूर है कि अधिक आमदनी वाले परिवार की शिक्षा, स्वास्थ्य रक्षा इत्यादि में प्रतिशत खर्च बढ जाता है।

किसान का खर्च

ऊपर कही बातों को और स्पष्ट करने के लिए दो-तीन परिवारों के बजट का विवेचन करना आवश्यक मालूम पड़ता है। और चूँकि भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है इसलिए पहले किसानों की ओर ही दृष्टि डालना उचित जान पड़ता है। यों तो आपको सुखी किसान भी शायद कहीं कहीं मिल जायँगे। हमको उनसे अधिक मतलब नहीं क्योंकि उनकी संख्या बहुत कम है। अस्तु भारतीय किसान के रहन-सहन का दर्जा बिल्कुल नीचा है। उनके कुटुम्ब की मासिक आमदनी पंद्रह रुपए से कम ही रहती है। यह पता लगाया गया है कि संयुक्त प्रांत में किसानों की वार्षिक आमदनी सत्तर से नब्बे रुपये के बीच रहता है। इसी से हम इनके रहन-सहन के दर्जे का अनुमान लगा सकते हैं। इन बेचारों को साल भर हमेशा दोनों वक्त रूखा सूखा भोजन भी नहीं मिलता। पहनने का कपड़ा बहुत ही मामूली, फटा और मैला रहता है। अक्सर ये लोग एक साधारण छप्पर में ही गुजर करते हैं। अधिकतर यह पाया गया है कि जो परिवार बहुत गरीब होता है उसकी जनसंख्या बहुत अधिक होती है। इन गरीबों के बच्चे खाली एक कपड़ा पहिने या कभी कभी नंगे ही घूमा करते हैं। इन बच्चों को दोनों [illegible]

घी या अच्छा खाना तक नहीं मिलता। उनको पढ़ाई लिखाई की तो कोई परवाह ही नहीं करता। भारत में शायद ही कोई किसान ऐसा होगा जो कर्जदार न हो। किसी का तो यह मत है कि वह कर्ज लेकर पृथ्वी पर आता है, जिन्दगी भर महाजन के यहाँ रुपया भरता है और अन्त में कर्ज छोड़ कर ही मर जाता है। बिना कर्ज के तो इनका काम ही नहीं चलता। बीज, पशु, औजार या ब्याह शादी को तो छोड़ दीजिए, बेचारा किसान अपने रोज के खर्च के लिए भी कर्ज लेता है। उसको सरकारी लगान भी देना पड़ता है। इसी में उसकी आमदनी का काफी बड़ा हिस्सा निकल जाता है। फिर कर्ज की रकम को कौन कहे वह उसका ब्याज तक नहीं चुका पाता।

नीचे एक गरीब और एक मामूली किसान के सालाना पारिवारिक खर्च का ब्यौरा दिखाया गया है —

	मामूली किसान का खर्च (रुपये में)	गरीब किसान का खर्च (रुपये में)
भोजन	६८	४६
कपड़ा	२१	१३
घर	१३	—
रोशनी व लकड़ी	५	५
दवा	१	१
शिक्षा	४	—
यात्रादानादि	१२	७
	१२४	७२

गरीब किसान की वार्षिक आमदनी तिहत्तर रुपए थी। मामूली किसान की आमदनी एक सौ चौबीस रुपए थी। गरीब किसान का दवा पर अधिक खर्च हुआ। मामूली किसान ने तो शिक्षा पर चार रुपए खर्च किए परन्तु गरीब किसान ने कुछ नहीं खर्च किया। गरीब किसान की आमदनी का ६०%

अर्थात् लगभग २/५ वां भाग भोजन पर खर्च हुआ परन्तु मामूली किसान ने केवल लगभग आधी आमदनी भोजन पर खर्च की। दोनों परिवारों की आमदनी का लगभग १६% अर्थात् छठाँ भाग कपड़े पर खर्च हुआ। दान धर्म, यात्रादि पर भी दोनों परिवारों ने अपनी आमदनी का लगभग यही भाग अर्थात् ६% व्यय किया। शिक्षा, दवा आदि की अपेक्षा दान धर्म, आदि पर अधिक खर्च हुआ। इससे भारतीय किसानों की धार्मिक प्रवृति का ज्ञान होता है।

गाँव के मजदूर और उनका खर्च

अतएव यह तो सिद्ध हो गया कि भारतीय किसान बड़े कष्ट और श्रम से अपना जीवन निर्वाह करता है। किसान का दूसरा भाई है गाँव का मजदूर। कुछ लेखकों का कहना है कि इनकी हालत तो किसानों से भी खराब है। किसान इन लोगों पर जमींदारी हुकुम चलाते हैं अर्थात् जैसे जमींदार किसानों से बेगार लेते हैं तथा उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, वैसे ही किसान लोग इन मजदूरों के साथ व्यवहार करते हैं। लेकिन ध्यान देने की बात तो यह है कि इससे और मजदूर के पारिवारिक व्यय से विशेष सम्बन्ध नहीं है पर यह जरूर है कि इससे मजदूरों की आय कम हो जाती है। मजदूरों और किसानों के बीच केवल एक फर्क पाया गया है और वह यह कि किसानों की आय प्रकृति के ऊपर निर्भर रहती है लेकिन मजदूरों को मजदूरी कुछ न कुछ नियमित होती है। परन्तु सोचने लायक बात तो यह है कि अकसर मजदूरों का हिस्सा बाँध दिया जाता है। किसान के पास जो अनाज रहता है वह स्वयं उसके परिवार के लिए पर्याप्त नहीं होता। इसी में से उसको मजदूर की मजदूरी देनी पड़ती है अतएव मजदूर को मजदूरी के रूप में कम से कम अनाज देने का प्रयत्न करता है। ऐसी दशा में मजदूर तो सचमुच किसानों से भी गए बीते बन जाते हैं तब भी हम उन्हें बिना अधिक गलती किए किसानों के रहन-सहन के दर्जे में रख सकते हैं।

गाँव के कारीगर का व्यय

भारतीय गाँवों में यदि किसी की हालत किसानों और मजदूरों से अच्छी

ही जा सकती है तो वह है गाँव के शिल्पी या कारीगर की हालत। न तो प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है और न मजदूरों की तरह उनकी त्रुटियां किसानों के हाथ दबी रहती है। यदि कहा जाय कि गाँव के कारीगर की मासिक आमदनी पद्रह रुपये के ऊपर पहुँच जाती है तो कोई गलत बात न होगी। बहुत से परिवारों के बजट को देखने के बाद पता चलता है कि या तो ये लोग भी खाने को चानों पर आधी से अधिक रकम खर्च कर देते हैं। रोशनी और ईंधन पर इनकी आमदनी का बीसवाँ हिस्सा खर्च होता है और कपड़े लत्ते पर लगभग दस प्रतिशत। मकान का किराया, रोशनी और ईंधन के खर्च के बराबर होता है। आमदनी का बचा हुआ पाँचवाँ भाग अन्य वस्तुओं पर खर्च कर दिया जाता है। हलाकि घी दूध तो इन्हें भी नहीं के बराबर ही मिलता है। सफाई और रोशनी का भी इन्तजाम खराब रहता है और किसानों की तरह इनमें भी शराब या ताड़ी पीने की बुरी आदत पाई जाती है। यह बात भी नहीं है कि ये कर्ज न लेते हों और सूद की दर तो हमेशा की तरह पचहत्तर अस्सी प्रतिशत सालाना से कम नहीं होता। शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में ये लोग भी बहुत कम खर्च करते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

१—रहन-सहन के दर्जे का अन्दाजा किन किन बातों से लगाया जाता है।

२—अपने गाँव के साधारण किसान की रहन सहन के दर्जे की तुलना उसी गाँव के मजदूर की रहन सहन के दर्जे से कीजिए।

३—अमीर लोग किन वस्तुओं पर अपना रुपया अधिक खर्च करते हैं?

४—अपने गाँव के कम से कम एक साधारण किसान, एक अमीर किसान और एक गरीब किसान के आय-व्यय का एक मास का हिसाब लगाइये और यह बतलाइये कि निम्नलिखित मदों पर कितना प्रतिशत खर्च प्रत्येक दर्जे के किसान ने किया —

(अ) भोजन (ब) कपड़ा (स) मकान भाड़ा (उ) शिक्षा (क) मुकदमेबाजी (ख) मादक वस्तु (ग) दानधर्म (घ) अन्य खर्च।

५—किसी कुटुम्ब के मासिक आय-व्यय का हिसाब देख कर हम यह किस प्रकार बता सकते हैं कि व्यय अच्छे तरीके से किया जा रहा है या नहीं ?

६—रहन सहन का दर्जा ऊँचा करने के क्या तरीके हैं ? उनका उपयोग भारत में कहाँ तक किया जा रहा है ?

७—पारिवारिक आय व्यय रखने की आवश्यकता समझाइये।

८—अपने कुटुम्ब के मासिक व्यय की आलोचना कीजिये।

९—यातायात का रहन सहन के दर्जे पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

१०—रहन सहन का दर्जा बढ़ाने में शिक्षा का महत्व समझाइये।

११—रहन सहन के दर्जे का अर्थ समझाइये। गाँवों में रहन सहन का दर्जा क्यों नीचा है ? उसे किस प्रकार ऊँचा किया जा सकता है ?

आठवाँ अध्याय

भोजन कितना और कैसा हो ?

भोजन की आवश्यकता

अब तुम जान गए होगे कि हमारी रहन-सहन में भोजन बड़े महत्व का स्थान रखता है। अतएव यह बहुत जरूरी है कि हम यह जान लें कि हमको कैसा भोजन करना चाहिए। पहले यही बताइये कि आप भोजन क्यों करते हैं ? हम जो वस्तुएँ खाते हैं उनसे क्या मतलब निकलता है ? उत्तर में कहा जा सकता है कि हमें दो बातों की आवश्यकता रहती है एक तो गर्मी की और दूसरे चर्बी की। आप अभी दिनों दिन लम्बे चौड़े होते जा रहे हैं और आपका डील डौल बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि आप खाना खावें। भोजन करने से करीब पचीस साल की उम्र तक हमारे शरीर और दिमाग की वृद्धि होती है ताकि वे मजबूत बन सकें। दूसरे, काम करने से शरीर और दिमाग में जो कमी होती है उसकी भी आहार से पूर्ति होती है। गा

वस्तु हम खाते हैं उनमें से कोई बदन को गर्म रखती है और किसी से गोश्त बनता है। बदन को चंगा रखने के लिये यह जरूरी है कि हम दोनों तरह की चीजें खाया करें। हमको जितनी गोश्त बनाने वाली चीजों की जरूरत पड़ती है उससे चार गुना ज्यादा गर्म रखने वाली चीजों की है। अगर हम एक तरह का खाना जरूरत से ज्यादा खावें और दूसरी तरह का जरूरत से कम, तो हमारा पेट तो भर जायगा लेकिन हमारी तन्दुरुस्ती को नुकसान पहुँचेगा।

चर्बी, प्रोटीन (Protein), चीनी और विटामिन (Bitamin)

ऊपर बताई हुई बातों से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि हमको खास खास वस्तुएं खानी चाहिये परन्तु अब यह कैसे समझा जाय कि कौन कौन-सी चीजें अवश्य खानी चाहिए और कितनी। इसके पहले यह बताना जरूरी है कि प्रत्येक भोजन की वस्तु से हमको तीन पदार्थ मिलते हैं चर्बी, प्रोटीन और चीनी। दही, घी, मक्खन तथा नारियल व तेल आदि में चर्बी की मात्रा अधिक होती है। प्रोटीन एक पदार्थ का अंग्रेजी नाम है। मिच, बदाम, मूँगफली, दाल, सूजी, बिना कूटे व पालिश किए हुए चावल और गोश्त में प्रोटीन काफी होती है। इसी तरह शक्कर, शहद, गन्ना, आटा, चावल, जौ व मुरब्बा वगैरह में चीनी बहुत होती है। चर्बी, प्रोटीन और चीनी के अलावा हमको विटामिन नाम के एक तत्व की आवश्यकता पड़ती है। विटामिन कई तरह के होते हैं जैसे विटामिन A, विटामिन B, विटामिन C, विटामिन D इत्यादि। हमको इनकी भी आवश्यकता पड़ती है। दूध और फलों में पानी की मात्रा अधिक होती है, चर्बी, प्रोटीन व चीनी कम रहती है। लेकिन तब भी उनकी कदर इसी लिये की जाती है कि उनमें विटामिन होता है। गाय के दूध में ऊपर बताए चारों विटामिन होते हैं लेकिन विटामिन A सबसे अधिक होता है। यह जरूरी नहीं कि हर एक चीज में ये सारे विटामिन हों जैसे मिर्च, चाय, कहवा में विटामिन होता ही नहीं। गोभी, टमाटर आदि में पहले तीन विटामिन खूब होते हैं। फलों में विटामिन C की अधिकता रहती है।

भोजन के भेद

अस्तु, आजकल के प्रचलित भोजन तीन हिस्सों में बाँटे जा सकते हैं — फल, अन्न और मांस। फल का आहार सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है। फलों के ऊपर रहने वाले प्रकृति देवों के पशु-पक्षी कितने सुन्दर, मनमोहक, रंग-बिरंगे और मधुर कंठ वाले होते हैं। यारप के विद्वानों ने यह ढूँढ निकाला है कि फलों में एक तरह का बिजली होता है जिससे शरीर अच्छी तरह गठ जाता है। फलों के बाद अन्न का नम्बर आता है। रोटी, दाल, भात इन सब की गिनती अन्न में की जाती है। अन्न जितना सादा होता है उतना ही अच्छा होता है। हमारे पूर्वजों का उद्देश्य रहता था 'सादा जीवन व ऊँचे विचार''। जो मजा तथा फायदा गेहूँ की बालियों में होता है वह गेहूँ में नहीं होता। गेहूँ से उतर कर रोटी का गुण होता है, उसके उतर कर पूड़ी का और अन्त में पकवानों का। आटा जितना मोटा हो उतना ही अच्छा होता है। आजकल चक्की में पिसने वाले आटे की बहुत सी चीज गरमी के कारण जल जाती है। चावल के पकाने में उसका पानी अर्थात् माँड़ नहीं फेंकना चाहिए। पके हुये चावल में कुछ नहीं होता, सब गुण तो माँड़ में उतर आते हैं। हम लोगों में कुटे हुए चावल खाने की आदत है। कूटने से चावल का बहुत सा अंश अलग हो जाता है। इसी तरह से दाल को उसके छिलके के साथ खाना चाहिये। मूँग की छिलकेदार दाल में जो गुण होता है वह धुली मूँग की दाल में बिलकुल नहीं रहता। तरकारियाँ खून व पेट को साफ करती हैं। इसलिए हमारे भोजन में तरकारियों का होना जरूरी है। पेट के हाजमा को कभी बिगड़ने नहीं देतीं। इसके अलावा इनमें विटामिन, A, B, C, खूब होते हैं। डाक्टर लोग अन्नाहार में दूध की आवश्यकता बताते हैं और थोड़ा सा घी भी। माँस खाने वाले के शरीर में अक्सर एक तरह का विष पैदा हो जाता है तथा माँसाहारी का मन उतना वश में नहीं रहता। यूरप तथा पश्चिम के अन्य देशों में माँसाहारियों का नम्बर घटता जाता है और फलाहार और अन्नाहार करने वाले मनुष्य तादाद में बढ़ते

उपयुक्त भोजन की मात्रा

हमारे पुरखे पहले जो खाना खाते थे अथवा उन्होंने रोटी, दाल, भात, तरकारी, घी, दूध का जो सादा खाना ठीक किया था उसमें हमें सब चीजें मिल जाती हैं। रोटी और भात में चीनी की भरमार है, दाल और दूध से प्रोटीन मिलता है और अन्य पाचक पदार्थ मिल जाते हैं। आप कहेंगे कि यह तो पुराने जमाने की बातें हैं। आपका भायी राम पूछ सकता है कि क्या रोटी ज्यादा खाई जाय और दूसरी वस्तुएँ कम। श्याम कह सकता है कि मैं दूध तो दूध पिऊँगा मगर और चीजें केवल नाम करने को खा लूंगा। इसलिए यह जानना जरूरी है कि कौन सी वस्तु कितनी खानी चाहिए। रोटी या दूध से हमको जितनी चाहिए उतनी गोश्त बनाने वाली चीज नहीं मिल सकता और शक्कर, चावल, घी, मक्खन तो हमको सिर्फ गरम रख सकते हैं। जो लोग गोश्त खाते हैं उनको तो गर्मी पैदा करने वाली और गोश्त बनाने वाली चीजें उसी से मिल जाती हैं। मगर बहुत से लोग ऐसे हैं जो गोश्त नहीं खाते। हिन्दुओं में तो गोश्त खाने का रिवाज कम है। उनको इसके बदले क्या खाना चाहिए? मूंग, मटर, अरहर और इसी तरह की जितनी दालें हैं इन सब में गरमी पैदा करने वाली और गोश्त बनाने वाली दोनों तरह की चीजें होती हैं। सेर भर मांस में गोश्त बनाने वाली जितनी चीजें होती हैं उससे कहीं ज्यादा सेर भर दाल में होती है।

किसी ने सच कहा है हमारे आहार में मांस, मछली और अंडे रहने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है। हमें पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन दूध, दही, मट्ठा मिलना चाहिए। इसके अलावा हमारे भोजन में रोज कुछ न कुछ कच्चे (बिना आँच पर पकाए हुए) पदार्थों का रहना बहुत ज़रूरी है। इसके लिए हरा मटर, हरा चना, टमाटर, मूली, गाजर, ताजे फल, बेर, ककड़ी, खरबूजा, खट्टे व मीठे नीबू का रोज सेवन करना चाहिए। इससे स्वास्थ्य बनने के अलावा हमारी आयु भी बढ़ जाती है। हमारे भोजन में गुड़ और शक्कर का रहना बिल्कुल आवश्यक नहीं है। इन्हें यदि थोड़ा सा खाया जाय तो कोई हानि नहीं होती पर ज्यादा खाने से ये नुकसान पहुँचाते हैं। बाजार की मिठाइयाँ तो भूल कर भी नहीं खाना चाहिये। अस्तु हिसाब लगा

कर निकाला गया है कि स्वस्थ रहने के लिए एक युवा पुरुष को २४ घंटों में निम्नलिखित भोजन करना चाहिए —

घर का पीसा आटा ६ छटाँक, दाल १ छटाँक, चावल २ छटाँक, घी आधी छटाँक, तरकारी ६ छटाँक, फल ४ छटाँक, दूध आधा सेर और थोड़ा सा नमक, जो कि खाना पचाने के लिए बहुत जरूरी है।

भोजन उसी समय करना चाहिए जब खूब भूख लगी हो। यह न होना चाहिए कि बकरी की तरह हर समय मुँह चलता रहे। यह उसी समय हो सकता है जब भी वक्त से खाना खाया जाय। खाने के अलावा पानी पीना भी बहुत जरूरी है। लेकिन ध्यान रखना चाहिए कि पानी हमेशा खाना खाने के बाद आधा घंटा बाद पिया जाय। यदि पानी पीने की इच्छा बहुत तेज हो तो खाने के साथ दो चार घूँट पानी पी ले। चौबीस घंटे में दो सेर के लगभग पानी जरूर पीना चाहिए। गरमी के दिनों में पानी की मात्रा बढ़ा देना चाहिए।

अभ्यास के प्रश्न

१—एक युवा मनुष्य के लिए प्रति दिन कितना भोजन स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है?

२—आपके भोजन में कौन सी बातों का किस परिमाण में होना आवश्यक है?

३—किसानों और मजदूरों के भोजन में किन बातों की कमी रहती है और यह बिना खर्च बढ़ाये कैसे दूर की जा सकती है?

४—शहर में रहने वाले और गाँवों में रहने वालों के भोजन में क्या अंतर रहता है?

५—जैसे जैसे आमदनी बढ़ने लगती है, भोजन में किस प्रकार का अंतर होने लगता है।

६—प्रोटीन, चर्बी और विटामिन किन पदार्थों में अधिक होते हैं?

७—भोजन में दूध, फल और हरी तरकारी का महत्व समझाइये।

८—सात्विक भोजन के लिये किन वस्तुओं का उपभोग कितने परिमाण में करना चाहिये?

९—तामसिक भोजन के पदार्थों की सूची दीजिये।

१०—मानसिक परिश्रम के करने वाले व्यक्तियों को अपने भोजन में किन वस्तुओं का अधिक परिमाण में उपयोग करना चाहिये?

नवाँ अध्याय

विनिमय (Exchange1)

वस्तुओं की अदला बदली (Barter)

लकड़ी का काम करने वाले बढ़ई को बिना मोल लिए खाने को अनाज नहीं मिल सकता। वह कुर्सी मेज़, खिड़की, हल, गाड़ी आदि बना कर बेचता है। बेचने से जो दाम आता है उससे मंडी में जाकर वह अनाज खरीदता है। परन्तु क्या यह जरूरी है कि बढ़ई माल को रुपये पैसे के बदले बेचे? हमारे गाँव में अधिकतर यह होता है कि किसान अनाज देकर अपने मतलब की वस्तु दूसरे से ले लेते हैं। अगर रामू को एक जोड़ा धोती लेना होता है तो वह पन्द्रह बीस सेर अनाज देकर बाज़ार से उस धोती को ले लेता है। लोहार को जब अनाज की जरूरत पड़ती है तो वह किसी किसान को जिसे फावड़े आदि की जरूरत होती है वे औजार देकर अनाज ले लेता है। पुराने समय में रुपया पैसा तो चलता नहीं था। उस समय इसी तरह की अदला-बदली होती थी। हमारे गाँवों की तरह ही अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि देशों के असभ्य जंगली अब भी हाथी दाँत, गोंद, मोम, शुतुमुर्ग के पर वग़ैरह देकर उनके बदले में हथियार, औज़ार और खाने पीने की चीज़ें लते हैं।

बदले के लिए कम से कम दो चीजें जरूर दरकार होती हैं। जब हम यह कहते हैं कि किसी का बदला हो सकता है, तो हमारा मतलब यह रहता है कि उस चीज का बदला किसी और चीज से हो सकता है। लेकिन एक बात है। मान लो किसी बढ़ई ने एक हल तैयार किया और वह उसके बदले

अनाज लेना चाहता है। पर अनाज पैदा करने वाले किसान को उस समय हल की दरकार नहीं है। या अगर उसे हल की जरूरत है तो हो सकता है किन्तु उसके पास बदले में देने के लिये काफी अनाज न हो। यह भी हो सकता है कि किसान हल की जगह अनाज को ज्यादा काम की वस्तु समझता हो और इस लिये वह हल की जगह अनाज न देना चाहता हो। ऐसी हालत में बेचारे बढ़ई को किसी ऐसे किसान को ढूंढना पड़ेगा जिसे हल की जरूरत हो, जिसके पास अनाज भी काफी मात्रा में हो और जो हल को अनाज से अधिक उपयोगी समझता हो। अदला बदली हो जाने से दोनों को लाभ होता है। किसान को अनाज की अपेक्षा अधिक काम की चीज मिल जाती है। इसी तरह बढ़ई को भी हल के बदले अनाज मिल जाने से लाभ होता है। अगर बढ़ई को ऐसा कोई किसान नहीं मिलेगा तो वह भूखों मरने लगेगा। और फिर खाली अनाज से बढ़ई का काम नहीं चलता। उसे निमक, मिर्चें, तेल, खटाई आदि भी चाहिए। मान लो उसे हल के बदले अनाज मिल भी गया तो उसे ऐसे आदमियों की तलाश करनी पड़ेगी जो नमक, मिर्च, मसाला आदि देकर अनाज ले ले। इसी तरह दूसरे पेशे वालों को भी तंग होना पड़ेगा क्योंकि सब को चीजें बदलने की जरूरत होती है। लेकिन अगर इसी तरह सब लोग अपनी चीजें लेने वालों का पता लगाने लगें तो बहुत बखेड़ा पैदा हो जाय। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये रुपये पैसे चलाए गए। और आजकल हमें जब किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है तो हम बाजार जाकर उसे मोल लेते हैं। अर्थात् जिस मनुष्य के पास वह वस्तु रहती है उसे कुछ पैसे या रुपये देकर बदले में उस वस्तु को ले लेते हैं। किसी वस्तु की बिक्री से खरीदने और बेचने वालों को लाभ ही होता है, नुक्सान नहीं। खरीदार रुपये की जगह उस वस्तु को ज्यादा काम की समझता है और बेचने वाले को रुपये की जरूरत रहती है।

माल की खरीद और बिक्री (Sale and Purchase)

हम जिस मनुष्य के पास से चीज मोल लेते हैं वह सौदागर या व्यापारी कहलाता है लेकिन सौदागर और व्यापारी में एक फर्क रहता है। व्यापारी थोक माल खरीदता है और जरूरत के मुताबिक बेचता है। सौदागर

व्यापारियों से माल खरीद कर खाने या उपभोग करने वालों के हाथ बेचता है। व्यापारी एक फसल को एक जगह इकट्ठा करता है फिर उनको साफ कराकर फुटकर बेचने वालों के हाथ बेच देता है। व्यापारी कम से कम दामों में अनाज को मोल लेकर अधिक दाम पर बेचता है। किसान फसल तैयार होते ही बेच देते हैं। उस समय अनाज का भाव सस्ता रहता है। किसानों का यह विचार नहीं होता कि अगर अनाज रक्खा रहेगा तो आगे चल कर उससे काफी लाभ होगा। लेकिन दरअसल बात तो यह है कि हमारे किसानों की हालत ऐसी बुरी है और वे इतने कर्जदार रहते हैं कि वे अनाज को घर में रख नहीं सकते। व्यापारी उस सस्ते अनाज को मोल ले लेकर खत्ते भर लेता है और जब भाव खूब तेज होता है तब उसे बेचता है।

फसल तैयार होने के समय तो किसान प्राय सब अनाज बेच देते हैं। पर थोड़े दिन बाद उनकी रसद चुक जाती है। तब वे बनिए की शरण जाते हैं। बनिया उस समय अनाज किसानों को बाँटता है और उनसे वादा कर लेता है कि फसल पर वे उसका सवाया दे देंगे। इसी तरह बोवाई के समय वह किसानों को तेज भाव पर अनाज देता है। आप हिसाब लगा सकते हैं कि बनिए को क्या लाभ होता है। मान लो फसल पर वह एक रुपये का तीस सेर गेहूँ खरीदता है। और बाद में आवश्यकता पड़ने पर वह पन्द्रह सेर का अनाज बेचता है और वादा करा लेता है कि दूसरी फसल पर ब्याज सहित इन रुपयों का अनाज लेगा। फसल पर छै सात महीने में ब्याज सहित रुपये का फिर बीस सेर के भाव से गेहूँ ले लेता है। इस तरह एक ही साल में दोगुना फायदा उठाता है। फसल की बिक्री में लाभ-हानि, दर-खबर, तेज़ी मन्दी का ध्यान रखने से यही लाभ होता है।

इस खरीद और बिक्री से बनिए व्यापारी का ही फायदा होता है। बेचारे किसान का तो नुकसान ही रहता है। अगर उपज कम होती है तो किसानों को अधिक दाम तो मिलते नहीं। हाँ, बनियाराम जरूरी माल को अधिक ऊँचे भाव पर बेचकर खरीदारों से ज्यादा फायदा उठा लेते हैं। किसानों को लाभ पहुँचाने के लिए, उन्हें इन बनियों के हथकण्डे से बचाने